S.2

श्रीमद्भगवद्गीता

ब्रजभाषा-पद्यानुवाद

यालय
राणसी-५
351 A

श्री सीताराम साह

3.2

ई3/3574

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-1

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता

व्रजभाषा-पद्यानुवाद

पद्यानुवाद

श्री सीताराम साह

सम्पादिका

डॉ. ऊर्मिला शर्मा

प्रकाशक

© डॉ. (श्रीमती) पुष्पलता प्रताप

सिद्धाश्रम, कमच्छा, वाराणसी

प्रथम संस्करण, १९९५
मूल्य : रु. ८०.००

तारा प्रिंटिंग वर्क्स
वाराणसी

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

सब गीता-प्रेमियों
को
सादर समर्पित

प्राक्कथन

काशी के सुप्रसिद्ध शाह-वंश में लक्ष्मी और सरस्वती का दुर्लभ संयोग रहा है। उसके प्रख्यात प्रतिनिधि थे डॉ. भगवान्दास। आप के छोटे भाई श्रीसीतारामजी कला-मर्मज्ञ और 'नागर'-संस्कृति के उज्ज्वल प्रतीक थे। आप के विद्या-व्यासङ्ग और परमार्थ-साधना में रुचि के द्योतक हैं आप के द्वारा किये गए श्रीमद्भगवद्गीता और छह उपनिषदों के अनुवाद।

प्रस्तुत प्रकाशन श्रीसीतारामजी द्वारा किये गए श्रीमद्भगवद्गीता के व्रजभाषा में पद्यानुवाद को ले कर है। यह अनुवाद प्रमुख रूप से दोहा और चौपाई छन्दों में ही किया गया है। कहीं-कहीं वार्णिक वृत्त भी हैं। जैसे कि आरम्भ में ही श्लोक-संख्या ६ का अनुवाद 'भुजङ्गप्रयात' में है।

व्रजभाषा का सहज माधुर्य पद्य में ही विशेष रूप से खिलता है। प्रस्तुत अनुवाद का माधुर्य और प्रसाद पाठकों को अवश्य ही आह्लादित करेगा। अनुवाद सटीक और सुन्दर है। अनुवादक ने अनेक स्थलों पर पाद टिप्पणियाँ दी हैं, जो अत्यन्त उपयोगी हैं और उनके गम्भीर चिन्तन की द्योतक हैं। भगवद्गीता के अनेकानेक अनुवादों के भण्डार की श्रीवृद्धि इस अनुवाद से निश्चित ही होगी।

भगवद्गीता के माहात्म्य की बात उठाना सूर्य को दीपक दिखाना है। प्रस्थानत्रयी में इसे स्थान मिला है, आदि शङ्कराचार्य से लेकर सभी आचार्यों ने इस पर भाष्य किया है। लोक-भाषाओं में अनुवाद/टीका की संख्या भी अपार है। यह क्रम आज तक अक्षुण्ण है, इसका ज्वलन्त प्रमाण है, यह अनुवाद। यह काम उच्च कोटि का है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

बहन पुष्पलताजी ने ऋषि-ऋण से मुक्त होने का यह सुन्दर उपक्रम किया इसके लिए मैं उन्हें हार्दिक बधाई देती हूँ। आशा है कि वे उपनिषदों का अनुवाद भी शीघ्र ही प्रकाशित कर सकेंगी। पुत्रों के कर्तव्य को पुत्रवधू सम्पन्न करे तो अधिक प्रसन्नता होती है।

बहन पुष्पलताजी इस ग्रन्थ के प्रूफ़ मेरे पास छोड़ गई थीं ताकि भूमिका लिख सकूँ। प्रूफ़ पर दृष्टिपात करते ही यह बात समझ में आई कि अभी सम्पादन की दृष्टि से प्रूफ़ पढ़ना शेष है। तत्काल उनसे सम्पर्क करके यह अनुरोध किया गया कि महालया, २४ सितम्बर, १९९५ को इस ग्रन्थ के प्रकाशन का संकल्प छोड़ दें ताकि उक्त कार्य के लिये अपेक्षित समय मिल सके। तदनुसार अब प्रायः तीन मास बाद यह प्रकाशन सामने आ रहा है।

प्रूफ़ पढ़ने के श्रमसाध्य कार्य को मेरी अनुजा डॉ. ऊर्मिला शर्मा ने सहर्ष सम्पन्न किया है। प्रूफ़ पढ़ते समय ही ध्यान में आया कि अध्यायों का आरम्भ एवं समापन परम्परागत रीति से नहीं है; अध्यायों के आरम्भ में उस-उस अध्याय का नाम दिया गया था, जो श्रीमद्भगवद्गीता की प्रसिद्ध पुष्पिकाओं में प्राप्त है, अधिकतर वही और कहीं-कहीं बदला हुआ अन्य नाम (जैसे 'आत्मसंयम' के स्थान पर 'ध्यान') भी था। मूल संस्कृत तथा अनुवाद दोनों में उक्त नाम तथा हिन्दी में ही अध्याय, समाप्ति की सूचना मात्र थी। हमने अध्याय-संख्या की सूचना अङ्क द्वारा देते हुए नाम यथावत् (जहाँ अन्य नाम था उसे बदलकर प्राचीन नाम दे कर) रहने दिये हैं, एवं संस्कृत में परम्पराप्राप्त पुष्पिकायें लगा दी हैं। वक्ता के निर्देश (............उवाच) भी संस्कृत तथा हिन्दी में यथास्थान लगा दिये हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता की सेवा के इस अवसर से हम दोनों बहनें आनन्दित हैं।

प्रेमलता शर्मा
'आम्नाय'
२०९/१ करौंदी
वाराणसी-५

गीताजयन्ती, २०५२
शनिवार, (२ दिसम्बर, १९९५)

अनुक्रमणिका

विषय		पृष्ठसंख्या
श्रद्धाञ्जलि : श्रीमती पुष्पलता प्रताप		ix
श्री सीताराम साह : एक स्नेहाञ्जलि — अशोकजी		xvi
Sitaram Sah : An Obituary tribute— Prof. O.C.Gangooly		xix
अंग्रेज कलॅक्टर के पत्र की प्रतिलिपि		xxiii
'मेरे पुत्रों को'		१
अर्पण		२
वन्दना		३
अध्याय १.	अर्जुनविषादयोग:	४
अध्याय २.	सांख्ययोग:	१४
अध्याय ३.	कर्मयोग:	३०
अध्याय ४.	ज्ञानकर्मसंन्यासयोग:	४०
अध्याय ५.	कर्मसंन्यासयोग:	५०
अध्याय ६.	आत्मसंयमयोग:	५८
अध्याय ७.	ज्ञानविज्ञानयोग:	७०
अध्याय ८.	अक्षरब्रह्मयोग:	७८
अध्याय ९.	राजविद्याराजगुह्ययोग:	८६
अध्याय १०.	विभूतियोग:	९४
अध्याय ११.	विश्वरूपदर्शनयोग:	१०४

अध्याय	१२.	भक्तियोग:	१२०
अध्याय	१३.	क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग:	१२६
अध्याय	१४.	गुणत्रयविभागयोग:	१३४
अध्याय	१५.	पुरुषोत्तमयोग:	१४०
अध्याय	१६.	दैवासुरसम्पद्विभागयोग:	१४६
अध्याय	१७.	श्रद्धात्रयविभागयोग:	१५२
अध्याय	१८.	मोक्षसंन्यासयोग:	१५८

पादटिप्पणियों में आये सङ्केत

अ. का. — अयोध्या काण्ड

उ. का. — उत्तर काण्ड

बा. का. — बाल काण्ड

रा. च. मा. — रामचरितमानस

सु. का. — सुन्दर काण्ड

श्रद्धाञ्जलि

काशी के सुप्रसिद्ध शाह-वंश में उत्पन्न चार अद्वितीय भाइयों में सबसे छोटे थे बाबू सीताराम साह। उनकी शिक्षा-दीक्षा पर उनके पिता ने पूरा ध्यान दिया था। वे उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत व अंग्रेज़ी भाषा के विद्वान् थे। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी. ए. की डिग्री ससम्मान प्राप्त की थी। वे शरीर से बलिष्ठ, मन से दार्शनिक व बुद्धि से प्रकाण्ड विद्वान् थे। विधाता ने उन्हें सर्वगुण-आगार बनाने में हर सहयोग दिया था। एक ओर उनका आभिजात्य, दूसरी ओर वैसी ही विनम्र शिष्टता। वे अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व-सम्पन्न, तेजस्वी पुरुष थे। स्नेह-धारा जैसे उनकी बड़ी-बड़ी निर्मल आँखों से निरंतर झरती थी। जो उनसे एक बार मिल लेता वह उनसे प्रभावित हुए बिना न रहता।

अपने युवाकाल में ही वे एनी बेसेन्ट के सम्पर्क में आए। एनी बेसेन्ट उनके व्यक्तित्व, धाराप्रवाह अंग्रेज़ी बोलने की क्षमता, सुरुचिपूर्ण वेश-भूषा, कार्य-कुशलता व उदारता से बहुत प्रभावित थीं। दोनों ने एक बार अमरनाथ यात्रा की थी जहाँ भक्ति-भाव में भर कर माँ बसन्त के मना करने पर भी वे शेषनाग झील में कूद पड़े थे। हिमजल में स्नान तो कर लिया, पर नीले पड़ गए। वहीं आग जलाकर उपचार किया गया तब शरीर स्वस्थ हुआ। एनी बेसेन्ट के ही आग्रह से वे तत्कालीन कश्मीर महाराज श्री प्रताप सिंह जू देव के प्राइवेट सेक्रेटरी व मिनिस्टर रह कर उनके विश्वास व स्नेह के पात्र बन गए। माँ खीर-भवानी के आशीर्वाद से आपको संतति की प्राप्ति हुई। अपने सब पुत्रों के नामों में आपने महाराजा का नाम भी जोड़ दिया। इस प्रकार कश्मीर के प्रताप से प्राप्त अनमोल उपहार के प्रति अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त की और आदर भी।

मित्रों व परिवार के स्वजनों से सीतारामजी का अत्यन्त मधुर सम्बन्ध रहता था। उनके निवास सिद्धाश्रम में प्रतिदिन हिन्दू, मुसलमान व अंग्रेज़ों का आना जाना लगा रहता था। कभी-कभी उनमें से कोई अपनी श्रद्धा व स्नेह का प्रदर्शन निस्संकोच कर देते थे। ऐसे ही एक महानुभाव ने विभोर होकर लिख भेजा :—

"फूली फली रहै यह वाटिका तिहारी सदा
क्योंकि यहां की वस्तु हम भी तो खाते हैं।
फूल और पत्ती ले जाकर प्रसन्नता से
अपने इष्ट देव जी को प्रेम से चढ़ाते हैं।
धन परिवार और सुयश की वृद्धि हो
होता है सदा सब कारज और पाते हैं।
सीताराम पर हों सहाय सदा सीताराम
हृदय खोल हम यही मनाते हैं।"

इस पर यह भी बता दूँ कि सिद्धाश्रम में नाना रंग, नाना भाँति के फल फूलों का मेला था। आड़ू, लुकाट, नारंगी, संतरा, चीकू, नीबू, सफ़ेदा आम, जिसका फल अत्यन्त रसीला व मीठा होता था वाजिद अली शाह के बगीचे से मँगाया गया था, जामुन जिसमें अनारदाने सी गुठली होती थी, फ़ालसा, खीरनी, अमरूद, केले इत्यादि के वृक्ष फलों से भरे रहते थे। कमरख, कटहल, केवड़ा, बेल, बेर सब विशिष्ट जाति के थे। मौसम के फूल बड़ी सुरुचि से लगाए जाते जो अर्द्ध-चन्द्राकार लॉन की शोभा बढ़ाते थे। सिंचाई के लिए एक कुएँ में पम्प लगा था, दूसरे कुएँ का पानी हमारी सासरानी पीती थीं। दुपहर के भोजन के उपरान्त बाबूजी उनके साथ बिज़ीक खेलते थे। इसी समय दिन भर का समाचार हमारी सास उन्हें सुना देती थीं। बाबूजी को व्यस्त देख कर वे चुपके से बिज़ीक कार्ड में लगी सुई घुमाकर अपने नम्बर भी बढ़ा लेती थीं, जिसको बाबूजी देखकर भी अनदेखी कर देते और मुसकुरा देते थे। उन्हें इस दाम्पत्य सुख में उलझे देख उनके पुत्र, पौत्र व दौहित्र भी झटपट पान की चौकी पर बैठकर मनमानी कर लेते थे। बउआ जी आगे समाचार सुनाती थीं- अब गृहस्थी चलाना कठिन हो रहा है। सूरजबली आजकल फिर पागल हो गये हैं। बाज़ार से सामान लाने का काम उन्हीं के जिम्मे था। दाई के बुलाने पर कह देते हैं 'बहूजी से कह दो हम आजकल पागल हईं। खाली ड्योढ़ी पर बैठब और संझा के लालटेन झुलावत भए सरकार के संगे 'कासी क्लब' से लउटब।' जब उससे पूछा गया कि कल डाक्टर खन्ना के पिताजी के ऊपर घासफूस काहे फेंके रह्यो? ऊ बिगड़त

रहैं।' तो उत्तर दिया 'ऊ गंगाजी नहाकर आःवत रहें हम सोचा पुस्प वृष्टि कर देई। जल्दी में ताजे फूल नाहीं मिले तो सूखे फूलपत्ता छिड़क दिया। आप उनके समझा दिहल जाई कि एक तो सूरजबली बाबा विसनाथ की नगरी में रहत हैं, जो खुद बौरे हैं, दूसरे तीन पुस्त से साह खान्दान का नून खा रहे हैं, तो ऊ झक्क भी आ गई है। तो खन्ना साहब बुरा ना मानें। और ई बात सरकार के कान तक ना जाय।' मौज में आकर कभी सूरजबली सुनाते :

'सीता से सम्वाद करे के आ गइलीं मंदोदर रानी।
सीता बइठी ऽशोक वृच्छ तर बोलें मधुरी बानी।
कौने राजा की तू कनिया हौ कौने राजा की तू रानी।
कौने कारन जंगल अइलू हर लिअहिलें हमरे अभिमानी।'

ऐसे शृंगी-भृंगी मनमौजियों का समाज बाबूजी की छत्रछाया में पलता रहा। ये सरयूपारी ब्राह्मण अपना पूरा जीवन काल इसी ड्योढ़ी पर काट कर अन्त में बाबा विश्वनाथ की शरण में चले गये। उनकी इच्छानुसार मैं स्वयं उन्हें हरिश्चन्द्र घाट पहुँचा कर आई। एक दिन बउआजी ने सुनाया— बिट्टन नाउन बड़साइत पर आई रहीं। बहू की चोटी गुहे के बाद बहुत झनकत-पटकत रही। कहत रही— हमें खबर लगी है कि पण्डित गयादत्त व्यासजी के, हरकिशनदास नागर जी के, जीवनजी व्यास के, सुग्गन मियाँ के और हियां तक कि ननकू डरेबर साहब के भैय्या के बियाह की चिन्हाटी मिली है सोने की आँगूठी! और हम्मे चाँदी की सिकड़ी तक नाही!! हम कहा कि सरकार से कहवा देबे तोरा बिचार हो जाई। तो टिर्रा का बोली-पतोहू ले के तू बैठी हो बहू, बिचार होई मरदाने में। अभी तो हमें सम्पुन्नानन्दजी के हियां भी जाए के हैं। फिर अइबे अपनी चिन्हारी लेबे। तो आप उसका भी बिचार कर दीजिये नाहीं तो निगोड़ी घर-घर बुराई करत फिरि है।

सुग्गन मियाँ सप्ताह में पाँच छः दिन आते थे। परन्तु उनकी पहुँच बस मरदाने तक ही थी। चाय की मेज़ पर सब लड़के बालों के साथ चाय नाश्ते के बाद किसी बच्चे के द्वारा अन्दर बहूजी को आदाब अर्ज़ भिजवाते थे और धीरे से कान में कह देते थे— जरा बहूजी से एक खिल्ली पान तो लगवाते लाना। हाँ, उनकी बेटी मुग्गन बीबी अवश्य साल में चार बार ईद, तीज,

होली, दिवाली पर बउआजी के ज़नानखाने में प्रवेश पाती थीं। बउआजी उन्हें प्यार से बैठातीं। हालचाल पूछतीं, २१ रू. देकर बिदा करतीं। और उनके जाते ही आँगन, बरांडा, चटाई, पंखी बाल्टियो पानी से धुलवाती। ईद की फ़ीरनी के छः जोड़े शकोरे बाहर चाय की मेज़ पर भिजवा देतीं।

एक दफ़ा सुग्गनमियाँ अपनी बड़ी बहू से बड़े नाराज़ हो गए। आकर बोले— सुना भइयाजी, जाके मायके बैठी हैं रानीजी। गर्मियाँ आ गईं। अब क्या हैं ख़रबूज़े कट रहे होंगे लखनऊ में फिर सफ़ेदा आमों पर हाथ साफ़ करेंगी। ससुर-सास की कोई फ़िक्र ही नहीं। सोच रहा हूँ जानीमियाँ का दूसरा निकाह पढ़वा दूँ। अरे, हमें तो चार जायज़ हैं। इस पर भैयाजी लोग बोले— ठीक है हम बाबूजी को बताए देते हैं, बारात में चलने को तैयार रहें। इस पर सुग्गनमियाँ घबरा कर बोले— अरे भैय्याजी ऐसा ग़ज़ब मत करना। क्या मेरी ड्योढ़ी बन्द करवाना चाहते हो। मैं तो मज़ाक कर रहा था। सब लड़के उन्हें खूब छेड़ते, शिकार के दरम्यान हुई एक वारदात पर उनके सामने जैसे ही जंगली जानवर ने छलाँग लगाई वो घबरा कर पीछे हटे, गिरे, और हाथ की बन्दूक का दुनाला फट गया। इस पर बाबूजी ने एक कविता लिख दी (जो मिल नहीं रही है) उसकी दो लाइनें गागाकर बच्चे चिढ़ाते थे— फटा है दुनाला जो इक दम्म से, उलटा गिरा मिर्ज़ा फिर धम्म से।

अपने अन्तिम दिनों में जब बाबूजी बहुत बीमार थे, बीच बीच में तन्द्रा में हो जाते थे, तब कोने में रक्खे गैस सिलिंडर को देखकर पूछा—"क्या सुग्गन आया है?" काली शेरवानी, सफ़ेद दाढ़ी, मसख़रे मिज़ाजवाले सुग्गनमियाँ बाबूजी के आगे अदब से चुपचाप ऐसे ही बैठे रहते थे जैसा जीवनदायी गैस सिलिन्डर। बाबूजी के देहान्त के महीने भर के अन्दर ही सुग्गनमियाँ भी अल्लाह को प्यारे हो गये। उनके चारों बच्चे बस एक बार एक साथ आकर ये बता गए। फिर जानी, सूपन, हद्दों, मुग्गन संसार की भीड़ में खो गए।

बाबूजी बड़े कला पारखी थे। कलाविदों का उनके पास बराबर आना जाना रहता था। कुमारस्वामी, परसी ब्राउन, आर्चर, राय कृष्ण दास उनकी

योग्यता के क़ायल थे। उनके रोज़ के मिलने वालों में बंगाल के ज़मीदार परिवार के दो भाई मटरु बाबू व सन्तू बाबू थे। सफ़ेदा आम वृक्ष के नीचे आराम कुर्सियों पर बैठकर सायंकाल बैठकें होतीं। नौकर हुक़्क़ा भर-भर के देते जाते और सन्तूबाबू अपनी कलात्मक उँगलियों से वीणा-वादन कर सबका मन मुग्ध करते। अन्दर हमारी सास भुनभुनाती 'आज रात का बारह बजी।'

सीताराम जी की मृत्यु पर प्रोफ़ेसर ओ. सी गांगुली ने एक लेख लिखा था। "...A handsome person of great beauty, and an individual of great personal magnetism, he was in many ways a picturesque personality, not only by virtue of his personal charm and brilliant social virtues, but by virtue of his many accomplishments and cultural interests...' उनके इस लेख में बाबूजी का जीवन-वृत्तान्त विस्तार से दिया है जो आगे उद्धृत है। मैं केवल उन बातों का वर्णन कर रही हूँ जो मैंने उनके सम्पर्क में आने पर दस वर्षों में देखीं थीं।

समय से सोकर उठना, पूजा घर में जाकर दैनिक पूजा करना, फिर चाय की मेज पर सब बाल-बच्चों के साथ जलपान करना। तत्पश्चात् अपने कमरे में बैठकर गीता व उपनिषदों का अनुवाद करना उनकी दिनचर्या थी। डायरी वे रोज़ लिखते। पत्र बराबर लिखते, जो भी आता उससे बड़े प्रेम से मिलते। बीच-बीच में किसी पर विशेष कृपा भी करते थे। एक बार पूजा से उठकर जब वे मेरी सास को फूल दे चुके तब मेरी ओर एक काग़ज बढ़ा दिया। उस पर उनकी हस्तलिपि में लिखा था :

प्रह्लादारामे कुसुमित सदा पुष्पलतिका
सुगन्धा स्निग्धा सुरतरुसमा सर्वलोकप्रिया।
धर्मांके वसतु सदा धर्मरूपेण भार्या
सीतारामौ प्रमुदितमनौ कुर्वन्तु नो मंगलम्।

केनापि सीतारामभक्तेन कृतम्

मैंने उस पीले पड़ गए काग़ज को कोहनूर के समान सँभाल कर रख लिया है। मेरी माँ कहती थीं, 'तूने पिछले जन्म में सोने की गौर पूजीं होंगी

जो ऐसा पति मिला।' मैं सोचती हूँ उस गौर को मैंने कौस्तुभ मणि से सँवारा होगा जो ऐसे अलौकिक गुणसम्पन्न स्नेही ससुर मिले। मैं ही नहीं, भृत्य वर्ग भी उनकी कृपा का पात्र रहता था। वे सबको वस्त्र व आवश्यकता पड़ने पर दवाई देते थे और सबकी कुशल-क्षेम जानते रहते थे।

मैंने कभी उन्हें क्रुद्ध होते नहीं देखा। वात्सल्य-पूर्ण मधुर मुस्कान सदा उनके होठों से झरती रहती थी। कुटुम्ब के सदस्य उन्हें अपना आत्मीय जान सदा कष्ट-विपत्ति में सलाह लेने आते थे और कभी निराश होकर नहीं जाते थे। चाहे सम्पत्ति की समस्या हो, चाहे बच्चा गोद लेने की, चाहे हिन्दू-मुस्लिम तनाव और आसन्न संघर्ष की आपदा हो, चाहे बग़ीचे में कीट-पतंगों का प्रकोप, वे हर समस्या का हल समझदारी से करते थे, जिससे उसे सुलझाना आसान हो जाता था।

छोटे बच्चे उनसे निर्भय होकर खेलते थे। कभी कोई उनकी श्वेत लम्बी दाढ़ी की चोटी गूँथ देता था, कभी कान में लगाकर सुनने वाले उनके यन्त्र को भोंपू की तरह बजाता था। कोई गोदी में बैठता था, कोई मोटर में साथ बैठकर बाज़ार से फल ख़रीदने जाता था। वे किसी को नहीं भूलते। किसी को अख़बार की कटिंग देते, किसी को पुराने स्टैम्प। पशु-पक्षी तक पर उनका अपार प्रेम था। घर में भालू का शावक, मगर-शावक, गौ-वत्स, मोर, व कुत्तों की भी जगह थी।

इन सब सांसारिक व्यापारों के बीच उन्होंने बड़ी लगन से अनेक वर्षों में गीता का पद्यानुवाद व्रजभाषा में किया है। इसे प्रकाशित कर आप सबों के समक्ष उनकी ओर से प्रस्तुत करने में मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। आप इसे अवश्य पढ़ें, आपको आनन्द और शान्ति मिलेगी। यही पूज्य बाबूजी के प्रति मेरी श्रद्धांजलि होगी।

एक बार जब बाबूजी त्रिपुण्ड्र लगाए बाघाम्बर पर बैठे अपनी रचना में निमग्न थे, तब सागर विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर राजनाथ पांडेय उनसे मिलने आए। जाने के बाद उन्होंने बाबूजी पर एक लेख लिखा जो 'धर्मयुग' में छपा था, वे बाबूजी से अधिक प्रभावित हुए थे। लेख का शीर्षक था "शाहों में शंकर"। बाबूजी का वही शंकर रूप आप सबका मंगल करे, कल्याण करे।

इस ग्रन्थ का प्रथम प्रूफ़- संशोधन श्रीमतां मञ्जु सुन्दरम् ने किया था, जिसके लिए मैं उनके प्रति आभारी हूँ। उसके बाद डॉ. प्रेमलता शर्मा और डॉ. ऊर्मिला शर्मा ने इस दायित्व को उठा लिया। विशेष परिश्रम डॉ. ऊर्मिला शर्मा का रहा। मैं उन्हें स्नेहपूर्ण धन्यवाद देती हूँ। इस ग्रन्थ को सम्पादन के विशेष अनुभवी हाथों का स्पर्श अनायास मिल सका, इसके लिए मैं अपने को भाग्यशाली समझती हूँ।

सुरुचिपूर्ण मुद्रण के लिए तारा प्रेस, कमच्छा के अधिष्ठाता भाई श्रीरमाशङ्कर पण्ड्या और उनके सुपुत्र श्रीरविप्रकाश पण्ड्या मेरी हार्दिक कृतज्ञता के पात्र हैं।

इन सब बन्धुओं के योगदान से यह कालजयी ज्ञान सरल काव्यरूप में गीता-प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित है, जो सरस, मधुर, और गेय है। पाठक के मन को नदी की धारा के समान बहाये लिए चलता है। सुदर्शन चक्र के समान भय, शोक, मोह को काटता हुआ आनन्द की सृष्टि करता है, हिन्दी-जगत् को गीता-दर्शन मधुर व्रजभाषा में अपने लावण्य से मुग्ध करे. यही मेरी कामना है।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव।।

पुष्पलता प्रताप

पत्नी स्व. प्रोफ़ेसर धर्म प्रताप
एमीरिटस प्रोफ़ेसर ऑफ लॉ,
का. हि.वि.वि., वाराणसी

श्री सीताराम साह— एक स्नेहाञ्जलि

अशोकजी

इधर वर्षों से श्री सीताराम साह रुग्ण थे और सार्वजनिक अवसरों पर दिखाई न पड़ते थे, इसलिए काशीकी नवयुवक पीढ़ी बनारसके एक रंगीन व्यक्तित्वसे अपरिचित रह जाय तो अचरज क्या? पर जो लोग स्वर्गीय सीताराम साह के संपर्क में उस समय आने का सौभाग्य पा चुके हैं जब उनका स्वास्थ्य और ज़िंदादिली पूरे उरुजपर थीं, वे उन्हें कदापि नहीं भूल सकते। श्री सीताराम साह उन व्यक्तियों में थे जिन्हें सच्चे रईस या आभिजात्य का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। उन्होंने शरीर और बुद्धि दोनों कमाया था। वे अपने समयके प्रसिद्ध खिलाड़ी, शिकारी और सैलानी थे तो दूसरी और कला और संस्कृति-प्रेमी, विद्याभ्यासी, प्रसन्न और स्नेहशील चित्तके व्यक्ति थे। उनका पुराने चित्रों का संग्रह कलापारखियोंमें बड़ा प्रशंसित है। कम लोगों को याद होगा कि हिन्दी में शिकार संबंधी साहित्यनिर्माताओं में संभवतः वे पहले थे। उनकी 'दिलचस्प सच्ची कहानियाँ' नामक शिकार की कहानियों का संग्रह आजसे करीब ३० वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। दस वर्षकी उम्रमें मैंने उसे पढ़ा था और आज भी उसे नहीं भूला हूँ। इन कहानियों में उन्होंने केवल शिकारकी दाँव घात का ही वर्णन नहीं किया है, बल्कि जंगली जीवों को व्यक्तित्व प्रदान कर दिया है। इन कहानियों में बनैले सूअर, घड़ियाल, कौवे आदि का जो चित्रण हुआ है वह उसी प्रकार का है जैसा किपलिंग ने अपनी 'जंगल बुक' में किया है। अफ़सोस कि वे इस संग्रह के अलावा और नहीं लिख पाये, यद्यपि मसाला उनके पास बहुत था।

शिकार के सम्बन्ध में वे रहीम की मिश्रित कविताके ढंगपर कविता भी करते थे और मौजमें आनेपर इसे सुनाते थे। मुझे एक ही पंक्ति याद रह गयी है— वाराह बैठा गिरि गव्हरान्ते, ऊपर खड़े थे सब ही शिकारी।

झपटा, बढ़े नन्दन भीमकर्मा गोली चलायी मर्मान्तकारी।।

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

शिकारकी राजसिक प्रवृत्तिके साथ-साथ उनकी सात्त्विक प्रवृत्तिके कारण गीता का अध्ययन और ब्रजभाषा छंदों में उसका अनुवाद भी चलता था। दस पन्द्रह वर्षोंसे वे न जाने कितनी बार श्रीमद्भगवद्गीता का पारायण कर चुके थे और अपने अनुवादको मांज चुके थे पर उनकी तुष्टि न होती थी। मैंने बहुत आग्रह किया कि अनुवाद काफी मँज चुका है उसे छपा दीजिये, पर वे स्वभावसे प्रकाशन-भीरु थे। यही भीरुता उनमें थी वरना वे निर्भयता और वीरता के मूर्ति-रूप थे।

इस सम्बन्ध में, मुझे एक घटना याद आती है। शायद सन् १९२९ या ३० में काशीमें साम्प्रदायिक दंगा हुआ था। श्री सीताराम साह सार्वजनिक प्रवृत्तियों से साधारणतः दूर रहते थे, पर उस अवसरपर श्रद्धेय डाक्टर भगवान्दासकी अगुआईमें हिन्दू-मुसलमान नागरिकोंने शान्ति-स्थापनार्थ एक जुलूस निकाला। जुलूस जिस समय निकला, स्थिति खराब थी और जुलूस निकालना ख़तरेसे खाली न था। अतः श्री सीताराम साह चुपचाप अपने बड़े भाई डाक्टर भगवान्दासके साथ हो लिये। उनके पास पिस्तौल, बन्दूक सब थी, पर उन्होंने इस अवसर पर एक भी हथियार न लिया। ठीक स्मरण तो नहीं है, पर ऐसा ध्यान आता है कि इस जुलूसपर दारानगरके करीब उपद्रवियोंने हमला किया और एक मुसलमान सज्जनने बलात् डाक्टर साहबको अपने घरमें खींचकर बचाया। काफी भगदड़ मची। बड़े-बड़े तीसमार ख़ाँ सिरपर पैर रखकर जुलूस से भागे पर सीतारामजी वीरभावसे बराबर डाक्टर साहबके साथ रहे।

इन पंक्तियोंका लेखक उनका स्नेहपात्र रहा। वे मेरे पिताजीके मामाजी थे, मेरे पूज्य चाचाजी, स्वर्गीय अमरनाथजी, बाबू सीतारामजी के स्नेहपात्र और शिकार के साथी थे। मैं उनके साथ प्रायः हर दूसरे-तीसरे उनके घर लक्सा पर जाया करता था और अपनी दादीजी के साथ वहाँ रहा करता था। बचपन की अनेक मधुरतम स्मृतियाँ पूज्य दादाजी श्री सीतारामजी और उनके घरके साथ जुड़ी हैं जिनका उल्लेख नितान्त व्यक्तिगत हो जायगा। बड़े होनेपर भी नावपर घड़ियालकी शिकार-यात्रामें एक-एक हफ्ते उनके साथ ख़ेमेके जीवनका आनन्द लिया है। उन्होंने ही कन्धेपर रखकर बन्दूक़ से निशाना

साधना सिखाया। वे अपने सब पुत्रों को पुरुषार्थकी शिक्षा देते थे और मुझे भी इसका थोड़ा लाभ हुआ। उनका प्रसन्न बदन, पौरुष भरा तना सबल शरीर, खड़ी मूँछें, तेजस्वी नेत्र, आँखों के आगे नाच रहे हैं। उनकी वेशभूषा भी विशिष्ट थी। सिरपर चारा लगी जाली की गोल टोपी पहनते थे, कुरता दुपट्टा स्वच्छ धोती मण्डित उनका व्यक्तित्व ज़िन्दादिली का मूर्त रूप था। वे युवावस्था में कश्मीर नरेश के निजी सचिव रह चुके थे। उनके पास घण्टों बैठनेपर भी जी नहीं ऊबता था, रोमांचकारी क़िस्सोंका तो उनके पास भण्डार ही था। पढ़नेके बड़े शौक़ीन थे। ख़ास कर जीवट और पुरुषार्थ के साहित्य के। 'वाइड वर्ल्ड' पत्रिका नियमित रूपसे मंगाते थे। इस पत्र तथा स्ट्रैंड आदि प्रसिद्ध अंग्रेज़ी पत्रोंसे मेरा परिचय पहले-पहल उन्हीं के घर पर हुआ।

बाबू श्यामसुन्दर दासके सहपाठी और मित्र थे, बी. ए. की परीक्षामें वे दोनों साथ ही उत्तीर्ण हुए थे। उस साल काशीसे केवल तीन विद्यार्थी बी.ए. पास हुए थे और बाबू सीतारामजी द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। पूरी परीक्षा में चार-छः ही विद्यार्थी द्वितीय श्रेणी पा सके थे। बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने अपनी आत्मकथामें शायद दो ही आदमियों की प्रशंसा की है, एक बाबू सीताराम और दूसरे उनके बड़े भाई बाबू गोविन्ददास की।

बाबू सीतारामकी मृत्यु एक युग का अन्त है। वे काशीकी पुरानी नागरिक संस्कृतिके एक सच्चे प्रतिनिधि थे। उनके साथ जाने कितनी बातें लुप्त हो गयीं। उनके ढंगके लोग अब देखनेको न मिलेंगे। उनके साथ एक परम्परा समाप्त हो गयी।

Sitaram Sah (1877-1957)

An Obituary Tribute

PROF. O. C. GANGOOLY

In November last year, the hand of death snatched away an old resident of Banaras belonging to an old aristocratic family who was held in very high esteem in the society of the United Provinces. He did not quite belong to the present generation but to a generation which has now passed away. He was the last representative of this older generation and he represented a type of the old educated gentry of the aristocratic society who did not live a life of idle ease rolling in the comforts of his own wealth but as a highly cultured man of education and breadth of outlook, gracefully taking his part in the life of the society in which he lived and which he adorned by many qualities of head and heart.

A Picturesque Personality

A handsome person of great beauty, and an individual of great personal magnetism, he was in many ways a picturesque personality, not only by virtue of his personal charm and brilliant social virtues, but by virtue of his many accomplishments and cultural interests. He came from a family with high intellectual traditions and traditions of great public service. One of his ancestors— Manohar Das— who was a successful businessman in the city of Calcutta more than a century ago is still remembered with respect for his many charities and public services, one of which still survives in the shape of a large tank in Chowringhee opposite the New Market. Before the corporation of Calcutta was established, good drinking water was in great demand amongst the residents of a growing city and this act of charity of Manohar Das was long forgotten until three years ago when a marble tablet

was set up on the east bank of this tank commemorating his great public service.

From this family have come Dr. Bhagvan Das, the great sage and philosopher, Dr. Shri Ranjan, the present Vice-Chancellor of the University of Allahabad and the Hon'ble Sri Prakasa, the founder of the famous Vidyapith of Banaras and the present Governor of the State of Bombay. Another member of this family is a great champion of women's education and a famous collector of ancient Indian coins.

But Sitaram Sah was a brilliant luminary in his own right and did not shine in the reflected glory of the other members of his family, distinguished as they are in many spheres of activity.

Early Life

Son of Shri Madhav Dasji, Sitaram Sah was born in October, 1877. Educated in the Queen's College, Banaras, he passed his B. A. examination from the Allahabad University in 1896, and joined the Jammu and Kashmir State Service in 1901. His many talents were rewarded by the State and he was appointed as the Private Secretary and thereafter, a Minister in the service of H. H. Maharajah Pratap Singh, a position which he resigned in 1910 to come back to take his place in the city life of Banaras where he was appointed an Honorary Magistrate, an office which he resigned as a protest against the adverse policy of the government towards the new national movement. His stay in Kashmir invested him with two charming phases of his personality.

A Sportsman

He became fond of physical exercises and developed as a sturdy young athlete, a rare accomplishment amongst aristocrats. From his early years he became a trained shikari, well-known for his fine marksmanship and his house is still loaded with numerous trophies of animals' heads and tiger-skins. He was an all-round sportsman shining equally in cricket, tennis, polo, and billiards. He was a close associate of Dr. Annie Besant in the Theosophical Movement in Banaras and he helped in many ways the founding

of the Central Hindu College, an institution which he served in various capacities. He took an energetic part in many educational, social, philanthropic and cultural organisations eg, Kashi Vidya Pith, Central Hindu College and School, Kashi Club, Agarwal Sports Club, Agarwal Sabha, Nagari Pracharini Sabha, Ram Krishna Mission Hospital, Bharat Kala Bhavan, and the Banaras Hindu University. His literary activities were no less distinguished and are recorded in his translation of the Gita, and several Upanishads in Hindi verse and in a book on Animal Life based on his experiences in many hunting expeditions.

Connoisseur of Painting

But Sitaram Sah will be best remembered as a collector and connoisseur of Indian painting— an unique accomplishment and a role of national service—which is now assuming a great significance in the history of the study of Indian art in the new setting of a free and nationalist India. In the days of his youth the products of Indian art were looked down upon by even the educated section of Indians and it is a matter of wonder how an athlete preoccupied with games of hunting and other branches of sports could develop a love for medieval Indian painting. In the present context, in the many developments in the fields of Indian art, his great service in collecting and amassing a formidable assembly of great masterpieces of Moghul painting is a service of valuable national significance. It is the highly gifted connoisseurship in Indian painting and the critical eye of Sitaram Sah which could pick up the choice masterpieces and gather them in his storehouse of great national treasures. Considering the large number of Indian paintings that have been exported out of India to enrich European and American museums, thus denuding the wealth of Indian art-treasures during the last fifty years, Sitaram's services to the cause of national art cannot be too highly praised. Carried away by blazing emotions in the struggle for political freedom, our great leaders had no time to take steps to stop the tragic drain of the art-treasures of India for several generations.

The Great Art Collections

If Sitaram Sah had not collected and preserved a very large number of the chosen masterpieces of Moghul painting, India would have been much poorer in her national assets and historical records and we would have to travel to Europe and America to study the great masters of our great historical epoch. Nobody in India knew of the great art collection of Sitaram Sah before 1907, when Coomaraswamy examined the collection and pronounced it as an unique horde of great masterpieces of supreme value for the understanding and appreciation of India's contribution in the sphere of painting. Since Coomaraswamy's appreciation, the fame of this collection has travelled across the whole world and the residence of Sitaram Sah has become a temple visited by hundreds of tourists and connoisseurs of art and a place of great attraction to all pilgrims to the sacred city. There are thousands of industrial magnates, rich bankers and merchant princes in India to-day but there are hardly more than a dozen collectors of the art-treasures of India. And the name of Sitaram Sah as a collector and connoisseur of Indian painting will be, for ever cherished in national memory for his great service to a great national cause and, it is hoped, will inspire our future citizens to make equal contributions to the study of our national culture considerably impoverished by the continuous drain of its art-treasures for a period of more than a century.

Appreciation of the fine arts and scholarly study of our art history have not yet found its place in our Universities and hundreds of students are filing out from the portals of our temples of learning year after year completely oblivious of the supreme spiritual values of our national art. If our educated citizens are able to recover their national consciousness in art in some future time they will be able to realize what services Sitaram Sah has rendered to the cause of national art.

From,

L. Owen Esqr., I.C.S.,
Collector & Magistrate, Bánaras, (United Provinces,)

To,

B. Sita Ram Sah Sahib,

No. 144, Dated March 26, 1931.

Sir,

I have the honour to inform that the Government has noted with pleasure the names of those officials and nonofficials who gave assistance during the recent disturbances in Benares and those who have been mentioned by the District Magistrate in his official letter.

Your name occurs in the list and I take this opportunity of expressing my personal thanks to you for the good work that you did on this occasion.

I have the honour to be, sir,
Your most obedient servant.

Sd. L. Owen
Collector

विद्यार्थी युवक सीताराम साह

सीताराम साह

आम्नाय–ग्रन्थालय,
भरतमिलाप, करौंदी
वाराणसी-5

अपने पुत्रों के बीच में सीताराम साह (सन् १९२१)

माता खीर-भवानी के आशीर्वाद से प्राप्त श्री सीताराम साह की प्रथम सन्तान त्रिपुर बाला सुन्दरी तारा इन्दुमती देवी (बन्नो बीबी) श्रीनगर में (सन् १९०५)

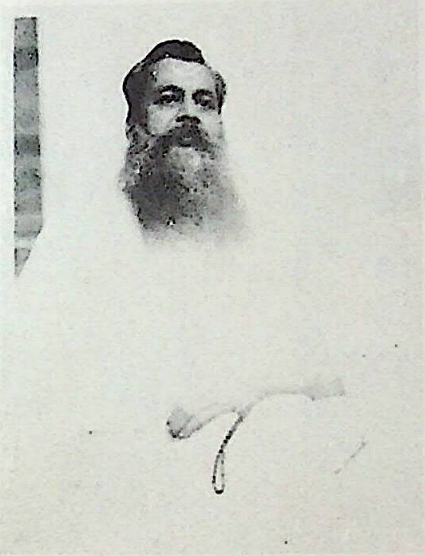

योगेश्वर श्री सीताराम साह (सन् १९२५ई०)

डा० भगवानदास छोटे भाई श्री सीताराम साह के साथ

वृद्ध दम्पति (सन् १९५०ई०)

पुत्र को विवाह यात्रा पर जाते समय आर्शीवाद देते हुए पिता (सन् १९४७ई०)

दादा-पोती (सन् १९४०ई०)

Serial Number of the Certificate 1299

Education Department, North-Western Provinces and Oudh.

Middle Class Anglo-Vernacular Examination.

(Instituted by G. O. No. 317A, dated 11th September 1877).

Register Number of Candidate in the list of Candidates of the year } 3085

Certified that Sitā Ram son of Babu Madho Das caste Agarwala resident of Benares District, passed the Anglo-Vernacular Examination of April 1890, and that he was placed in the Second Division.

Stamp of Office.

Second Language Sanskrit

Age declared by the Candidate at the time of the Examination. } 12

Muir Central College, Allahabad : Dated 16th July } 1891

G Thibaut

President, Board of Examiners.

No. 474

University of Allahabad.

—— +:o:+ ——

Entrance Examination, 1892.

Roll No. 1775

I certify that Sita Ram Queen's College Benares, aged 14 years and ______ months, passed the Entrance Examination held in the month of March 1892, and was placed in the Second Division.

ALLAHABAD:
The 23rd April, 1892.

[signature] M. A.,
Registrar.

No. **142**

University of Allahabad.

—:o:—

Intermediate Examination in Arts, A Course, 1894.

Roll No. 354

I certify *that* Sitaram

Queen's College, Benares *passed the Intermediate Examination in Arts held in the month of April 1894, and was placed in the* Second *Division.*

The subjects in which he was examined are English Literature; Arithmetic, Algebra and Geometry; Deductive Logic Sanskrit *and History* ~~*or Trigonometry and Geometrical Conic Sections.*~~

UNIVERSITY OF ALLAHABAD :: QUOT RAMI TOT ARBORES

Allahabad:
The 2nd June, 1894.

Dodd
Registrar.

Pioneer Press, Allahabad.—No. 720.—1-6-96.—200.

No. 50

University of Allahabad.

—:o:—

Bachelor of Arts, A. Course, 1896.

Roll No. 94

This is to certify that Sitarama

Queen's College, Benares obtained the degree of Bachelor of Arts in this University in the Examination of 1896; and that he was placed in the Second Division.

The subjects in which he was examined are English Literature, Philosophy and History

UNIVERSITY OF ALLAHABAD :: QUOT RAMI TOT ARBORES ::

Allahabad:
The 8th May, 1896.

Registrar.

UNIVERSITY OF ALLAHABAD.

UNIVERSITY OF ALLAHABAD
QUOT RAMI TOT ARBORES

Bachelor of Arts,
A. Course.

This is to Certify that Sita Ram
Queen's Coll. Benares
obtained the degree of Bachelor of Arts in this University in the Examination of 1895; and that he was placed in the Second Division. The subjects in which he was examined are English Literature, Philosophy, and History & Political Economy

The 2nd March 1897

Vice-Chancellor.

FOUNDED AT NEW YORK, NOVEMBER 17TH, MDCCCLXXV.

The Theosophical Society

AND UNIVERSAL BROTHERHOOD

Admits *Babu Sita Ram B. A. of Benares* to the number of its Fellows. In Testimony Whereof, it has issued to him the present Diploma, in the *ninth* Month of its *Twenty Eighth* Year.

REGISTERED AND DELIVERED THIS *22d* DAY OF *June 1903.*

Upendranath Basu GENERAL SECRETARY
INDIAN SECTION.

Genl. No. 7504

H. S. Olcott
PRESIDENT.

HEADQUARTERS, ADYAR, MADRAS, INDIA.

[illegible]लाय–ग्रन्थालय,
[illegible]निधि, करौंदा
वाराणसी-5

मेरे पुत्रों को

यह गीता २५ वर्ष की मेहनत है। इसको छपा कर हिन्दी भाषा की सेवा करना उचित है। इन्हीं दिनों में ६ उपनिषदों का भी हिन्दी में उल्था हुआ है।

सन् १९५० स्वराज दिवस
२६ जनवरी
माघ शुक्ल ८. सं. २००६

सीताराम साह

अर्पण

जेहि विधि तापत है त्वचा, जेठ मास की घाम ।
सोई विधि तापत हृदय को, प्रवल वासना काम।।१।।

जिनके वरनन के किये, सबही दुख हटि जाय ।
तन मन दोऊ विमल हौं, रहै भक्ति हिय छाय।।२।।

सुमिरि प्रथम 'गोविन्द' को, पूजि तबै 'भगवान'।
'राधे' तव पद हृदय धरि, गावहुँ गीत महान ।।३।।

हरी सुभट गुरु मानि के, युद्ध करौं चहुँ और।
आसुरि प्रकृती ते लरौं, घेरत जो प्रति ठौर ।।४।।

राम तिहारो नाम ले, कर्म करौं बिनु आस ।
दु:ख उठायो अपन पै, खलगन कियौ विनास ।।५।।

कृष्ण अँधेरो जगत मह, भटकि रह्यौ यह दास।
विज्जु छटा सम चमकि के, जग महँ करहु प्रकास।।६।।

वन्दना

व्यास महारिखि पूरन ग्यानी। कृष्ण चरित की कह्यौ कहानी।।
कर्मयोग को ज्ञान बतायो। माया के सब फन्द नसायो।।

वरन्यो धर्मसार सब भांति। बन्दौं व्यासदेव दिन राती।।
तापर बन्दौं तुलसी चरना। जग हित राम चरित जो वरना।।

फल को त्याग कठिन जब जाना। भक्ति सुलभ को जगमहँ आना।।
माने इन दोउ गुरू समाना। होवै जद्यपि अन्ध अज्ञाना।।

समय पाय सब फन्द नसावे। ब्रह्म को जानि ब्रह्म महँ जावै।।

सुनहु कथा यह अमरितबानी। ब्रह्म को ज्ञान सबै सुखदानी।।
[१]बिनसै उपजै पुनि पुनि बारा। अस्त उदय रवि रात उजारा।।

---

१. तुल. रा. च. मा : बिनसै उपजै ज्ञान जिमि पाय कुसंग सुसंग :

।।अर्जुनविषादयोगः।।

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ।।१।।

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ।।२।।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ।।३।।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ।।४।।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ।।५।।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ।।६।।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ।।७।।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ।।८।।

अर्जुनविषादयोग

धृतराष्ट्र बोले

धर्मभूमि कुरुखेत मह जुद्ध करन तहँ आय।
मो सुत पांडव की करनि संजय देहु बताय।।१।।

सञ्जय बोले

देखत पांडव सैन्य अपारा। तुरत सुजोधन गुरुहिं पुकारा।।२।।

देखहु सेन समुद्र समाना। धृष्टदुम्न बड़ नायक आना ।।
शिष्य तुम्हार महामति धीरा। सेन सुसाज्या महत गंभीरा ।।३।।

भीमविजय[1] सम धनुधर आये ।
विराट द्रुपद् युयुधनि[2] सुहाये ।।४।।

पुरुजित कुन्तिभोज बहुजेता। काशिराज बलवीर्य निकेता ।।
धृष्टकेतु शिवराज पधारे। चेकितान सब अस्त्र सम्हारे ।।५।।

युधामन्यु आये महावीर वीरा। सहित उत्तमौजा महाशूर धीरा।
अभीमन्यु आये सबै भ्रात संगे। महावीर योधा सने युद्ध रंगै ।।६।।

मम सेना मह योधा भारे। तिनके नाम सुनावहुँ न्यारे ।।७।।

आपु पितामह कर्ण प्रधाना ।
द्रोण विकर्ण 'रु कृप बलवाना ।।८।।

---

१. विजय अर्जुन का एक नाम है।

२. सात्यकि (तिलकजी)

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ।।९।।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ।।१०।।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि।।११।।

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्।।१२।।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।।१३।।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः।।१४।।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः।।१५।।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ।।१६।।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ।१७।।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ।।१८।।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ।।१९।।

सौमदत्ति अरु शूर बड़ेरे। अस्त्र निपुण रण कुशल घनेरे ।।९।।

भीष्म ससेन अपूरन[३] मानहु ।
भीम कि सेन सुपूरन जानहु ।।१०।।

निज निज भाग सम्हारि कै अचल रहहु रनधीर ।
एहि बिधि राखहु सबनि मिलि भीष्म पितामह वीर ।।११।।

मनहि बढ़ावन कुरुकुल रावा ।
गरज गरज कै शंख बजावा ।।१२।।

शंख सुभेरी अरु रण-बाजे । युद्धभूमि पै बेगहि गाजे ।।१३।।

सेत-तुरंगी रथ बड़ा बैठ्यो पारथ वीर ।
कृष्ण सहित नादित कियो दिव्य शंख गम्भीर ।।१४।।

पांचजन्य को कृष्ण बजायो। देवदत्त अर्जुन मुख लायो ।
पौण्ड्र विकट को भीमहि लीना। कर्म कठोर करत निस दीना १५

युधिथिर बाजहिं विजयअनन्ता ।
मणिपुष्प, सुघोषहिं, लहुरि तपन्ता[४] ।।१६।।

काशिराज बड़धनु लिये द्रौपदेय रथ-वीर।
धृष्टद्युम्न अरु मत्स्य नृप शिबी पुत्र रणधीर ।।१७।।

संखनाद बहु बेगते सब ही नरपति कीन ।
अभिमन्यू सब भाइ सह राजा द्रुपद प्रवीन ।।१८।।

भूमि अकास नाद ते व्यापे। कौरव हृदय डरन ते काँपे ।।१९।।

---

३. इसके अर्थ में बहुत मतभेद है। प्रचलित बोली में पर्याप्त का अर्थ "पूर्ण" काफी यथेष्ट माना जाता है। इससे यहाँ पर अर्थ यही ठीक लगता है कि दुर्योधन को अपनी जीत की शंका थी।

४. तपती नाम सूर्य की कन्या से पांडवों के पूर्वज का विवाह हुआ था। इसलिये ये लोग तापत्य पुकारे जाते थे।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ।।२०।।
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ।।२१।।
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ।।२२।।
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ।।२३।।

सञ्जय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ।।२४।।
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ।।२५।।
तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।।२६।।
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ।।२७।।
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।।२८।।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।।२९।।

युद्ध जुरन को समय जब देख्यो कपिध्वज वीर।
धनुष उठाय बोल्यो तबै निरखि कौरवन भीर ।।२०।।

अच्युत ते बोल्यो यह बैना।

अर्जुन बोले

बीच रखहु रथ, दोऊ सेना ।।२१।।

निरखन चहहुँ सुभट रन गाढ़े। मो सँग जूझन जो इत ठाढ़े ।।२२।।

जोधा देखों इहां जो आये। कौरवखल हित संगर छाये ।।२३।।

सञ्जय बोले

अर्जुन के अस बचन सुनि रोक्यो कृष्ण सुयान ।
दोऊ सेन के बीच में बागडोरि पुनितान ।।२४।।

पारथ को सब कुरु दिखलाये ।
भीष्म 'रु द्रोण सहित जे आये ।।२५।।

पारथ जो चहुँ ओर निहारा।
गुरु पितु भाइ मित्र परिवारा।।२६।।

स्वसुर सखा अरु पुत्रहु मामा ।
बन्धु जुरे जहँ युद्ध को कामा ।।२७।।

दुःख दया भरि अर्जुन कहहीं।

अर्जुन बोले

निरखि स्वजन जो रन महँ अहहीं।।२८।।

गात गिरत बलहीन है जीहहु जात सुखाय।
रोम रोम थर थर करै कम्प शरीरहि छाय।।२९।।

गाण्डीवं स्त्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ।।३०।।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।।३१।।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।।३२।।

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।।३३।।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ।।३४।।

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ।।३५।।

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ।।३६।।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ।।३७।।

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ।।३८।।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ।।३९।।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ।।४०।।

चाप गिरत है हाथ ते, दाहत है सब चाम ।
युद्ध करन की शक्ति नहीं, मनहू होत निकाम ।।३०।।

असगुन चिन्ह होत हैं भारी ।
बन्धु हनन नहिं होहि सुखारी ।।३१।।

नाहिं चहहुं मैं एकहू, विजय भोग अरु राज ।
राज को ले हम क्या करें प्राण 'रु भोग सुसाज ।।३२।।

राज चहें जिन हेतु हम भोग सबै सुख राग ।
वे ही युद्ध में है खड़े धन अरु प्राणन त्याग ।।३३।।

गुरु पितु पुत्र पितामह आये ।
हित अरु नात सबै इंह छाये ।।३४।।

इनकी हत्या नाहि पुनीता; निज मरनो बरु अधिक सुबीता ।
तीन लोक को राज न मागौं,पृथ्वी तुच्छ को दूरहि त्यागौं ।।३५।।

कौरव मारि अनन्द न होवै ।
पापको ढेर महा गरु होवै ।।३६।।

निज बन्धु हनै हम नाहिं अबै, कुरु मारि कहाँ सुख पाइय जू ।
इह लोक सबै परलोक सबै, शिरि कृष्ण सदाहि बताइय जू।।३७।।

लोभ-बिमोहित ये मतिहीना ।
निज जन हत्या दोष न चीन्हा।।३८।।

कुल नासहि दोस जो जानत हैं ।
सोइ पापते आपुहिं भाजत हैं ।।३९।।

कुल के नास ते धर्म नसाना ।
धर्म गये पुनि पाप बढ़ाना ।।४०।।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ।।४१।।

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।।४२।।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ।।४३।।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ।।४४।।

अहो बत महत्पापं कर्त्तुं व्यसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ।।४५।।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ।।४६।।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ।।४७।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः।।

नारीगन पुनि दूखित होंहीं ।
संन्ततिहू तब संकर होंहीं ।।४१।।

संकरता ते दोऊ नसांवैं ।
पितर अपिंड नरक महँ जावैं ।।४२।।

कुलहन्ता के दोस ते संकर जन्महि नीच।
जाती अरु कुल धर्म सब होहिं लुप्त जग बीच।।४३।।

जिन जन को कुल धर्म नसान्यो।
तिनहिं निरन्तर नरक समान्यौ।।४४।।

लोभ ते मारन बन्धु जो सूझा ।
एहि सम घोर, पाप नहिं दूजा ।।४५।।

अस्त्र रहित मोहिं कौरव मारैं ।
होय भलो वह सबहि प्रकारै ।।४६।।

सञ्जय बोले

दुःखित ह्वै अर्जुन रह्यो, रथ भीतर रण बीच।
धनुष बाण सब त्यागि कै, बिलपत करि मन नीच।।४७।।

प्रथम अध्याय समाप्त

.२.

।।सांख्ययोगः।।

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ।।१।।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।२।।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।३।।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ।।४।।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ।।५।।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ।।६।।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि
मां त्वां प्रपन्नम्।।७।।

सांख्ययोग

संजय बोले

दया सहित विलपत जब देखा।
बोल्या यदुबर ताहि निमेखा ।।१।।

श्रीभगवान् बोले

कठिन समय यह कातरी, कहं ते तोका आय।
कीर्ति स्वर्ग अरु आर्यपन, जो सब देय नसाय।।२।।

कायरपन तोहि नाहि सुहावे।
अब डर त्यागि तु शस्त्र उठावे।।३।।

अर्जुन बोले

भीष्म अरु द्रोण जो पूजित लोगू।
तिन पर बाण चलै, किमि जोगू।।४।।

गुरुजन मारन नहीं भलो, भलो भीख, इह लोक।
हितू गुरुन हनि रुधिर युत, भोग होंय बिनु रोक ।।५।।

नहिं जाने हम का भली, हार जीत दोउ बीच।
मारि जिन्हें हम मरन चह, सम्मुख ठाढ़े नीच।।६।।

मन महँ यहि दीनता समानी, उचित धर्म की लीक भुलानी।
जो बिधि उत्तम, सो बतलावो, शिष्य तुम्हारो, तुम सिखलावो।।७।।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्-
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।।८।।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह।।९।।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः।।१०।।

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।११।।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।१२।।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।१३।।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।।१४।।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।।१५।।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।१६।।

सकलभूमि की सम्पदा मिले स्वर्ग को राज।
तबहूँ शोकित तन जरैं घटे न दुख को गाज।।८।।

संजय बोले

माधव ते अस बोलि कै, विजय महायुधवीर।
युद्ध करन मैं नहिं चहौं, मौन गह्यो गम्भीर।।९।।

दुःख भर्‌यो अर्जुन निरखि, दोउ सेन के बीच।
हंस के बोल्यो ताहि ते, यादव असुरन मीच।।१०।।

श्रीकृष्ण बोले

जो नहिं सोचन के हैं जोगू, तिन हित क्यों तुम मानत सोगू।
बोलहु समुझ भरी तुम बानी, कोउ हित सोच करै नहिं ज्ञानी।।११।।

नाहिं समय ऐसो भयो, जामे हम सब नाहिं।
नाहिं समय अस होइहै, हम सब जबै नसाहिं।।१२।।

बालापन यौवन जरा, तापर पुनि नव देह।
देह में देही आपके, भोगत बिनु सन्देह।
धीर पुरुष यह जानिके, करै न तिनको नेह।।१३।।

स्पर्श भये सुख दुख मिलै, शीत अरु उष्ण जनाय।
अस्थिर आवत जात ये, इनको तू सहि जाय।।१४।।

इनते जो कोउ दुःख न माना।
समबुधि धीर तबै अमराना।।१५।।

जो है सो बिनसै नहीं, जो नहिं सो नहिं होहि।
इन दोउन की सत्यता, ज्ञानी निरखत सोहि।।१६।।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।।१७।।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।१८।।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।१९।।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।२०।।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ।।२१।।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।२२।।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।२३।।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।२४।।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ।।२५।।

अबिनासी हम ताको जाना, जाते सर्व जगत परिमाना ।
अव्यय नासि सकै नहीं कोई, सत्य सदा तुम मानहु सोई ।।१७।।

देहि अनन्त अविनासि सदा है, देह की नास सदाहि कहा है।
सोसब दुःख को दूर करोजू, [1]युद्ध करन कटि फेंटि कसोजू ।।१८।।

कोउ जन एहि को हन्ता जाने, हनो जाय यह कोऊ बखानै।
दोऊ सत्य न जानहिं बात, हन्ता हन्य नहीं यह तात।।१९।।

जाको जन्म मरन नहीं तापे[1], जाहि भये पर नास न व्यापे।
अज अरु नित्य पुरातन ये है, देह मरे पर देहि रहै है।।२०।।

सदा अनासी अज अघट, जो जन जानै याहि।
सो जन ताकी कवन विधि, हिंसा करै, कराहि।।२१।।

चीर[2] पुरानो त्यागि कै, बसन नवीनहिं लेत।
देही हू सोही करे, जीर्ण देह तजि देत ।।२२।।

अनिल अनल जल अस्त्र प्रहारा ।
एहि पर कछु नहिं करें विकारा।।२३।।

नाहिं कटे सूखे जरै[3], भीजत है पुनि नाहिं ।
व्यापक नित्य सनातन, स्थिर अरु अचल कहाहि।।२४।।

व्यक्त रूप जो नहि धरै, मनहु न जाने सोय।
जामह होय बिकार नहिं, ताहि जानि, मत रोय ।।२५।।

---

१. कठोपनिषद्, अध्याय-२, दूसरीवल्ली श्लो. १८।
२. रा. च. मा. उ. कां. दोहा १०९ में ६ पंक्ति :
"जिमि नूतन पट पहिर के नर परिहरै पुरान"।
३. केशवदासजी लिखते हैं—
"जीव जरै न मरे नहिं छीजै ।
ताकह सोक कहा करि कीजै" ।।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ।।२६।।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।२७।।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ।।२८।।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।२९।।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।।३०।।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ।।३१।।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।।३२।।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ।।३३।।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।।३४।।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ।।३५।।

बहु जन्म मृत्यु जो मानिये। मन में न सोक को आनिये।।२६।।

जन्म लिये पर मरत है, मृत जन पुनि जनमाय ।
होय अवस, यह मानिके, दुःखहिं देहु दुराय ।।२७।।

आदि अज्ञात अरु अन्त अजाना, केवल मध्यकाल कछु जाना ।
ऐसी बिधि जब जानहु भारत, ता हित होवहु क्यों तुम आरत२८

अचरज मानि निहारत कोई, ताहि बखानत तेहि बिधि कोई।
अचरज मानि सुनत है कोऊ, सुनहू कै नहिं जानत वोऊ।।२९।।

सब देह में जो देहि है, ताहि अमर नित जानिये ।
एहि कारनै कोउ जीव हित, सोक को नहिं आनिये ।।३०।।

धर्म आपनो जानि के, डरपहु नहिं हे वीर ।
धर्म-युद्ध प्रिय होत है, क्षत्रिन को रनधीर।।३१।।

जबै युद्ध ऐसो बिना यत्न आवे, महाभाग आपै को जोधा बतावै।
खुलैं स्वर्ग के द्वार बेकष्ट वांही, सुखी होंय जोधा, सोई
जुद्ध माहीं।।३२।।

जो तुम धर्म युद्ध ते भागौ, पाप लहौ अरु कीरति त्यागौ ।।३३।।

अनँत[४] अकीरति होवै तेरी, मरनहु ते यश हानि बड़ेरी।।३४।।

डर ते युद्ध छांड़ि तुम दीना, ऐसो कहिहैं युद्ध प्रवीना ।
जो जन तोंहि महारथ माने, तोहि गनै पुनि तुच्छ समाने ।।३५।।

---

४. रा. च. मा. अ. कां. दोहा ९४ के नीचे
"संभावित कहुं अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू" ।।

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ।।३६।।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय
युद्धाय कृतनिश्चयः ।।३७।।

सुखःदुखे समे कृत्वा
लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व
नैवं पापमवाप्स्यसि।।३८।।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये
बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ
कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।३९।।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।।४०।।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।४१।।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।।४२।।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।।४३।।

दुर्वच बोले रिपुजन वीरा। करिके निन्दा दे बहु पीरा।।३६।।

रणमह मृत्यु स्वर्ग दे, रणमह जीते राज।
सो पारथ कटिबद्ध है, बांधहु रण को साज ।।३७।।

सुख दुख लाभ 'रु हानि मह, समता मानहु आप।
जीत अरु हार समान गिन, युद्ध करहु बिनु पाप।।३८।।

सांख्य[५] सुमारग तोहि सुनावा, कहन चहौं अब जोग कोभावा।
पारथ जाको जेहि छिन पावौ, कर्मको बन्धन तुरत हटावो।।३९।।

कर्म[६] जोग आरम्भ करि, हान अरु पाप न होय।
नेकु अंश एहि धर्म को, बहु भय देवै खोय।।४०।।

स्थिरमति की यहि बुद्धि है एकहि, अस्थिरमति के मार्ग अनेकहि।।४१।।

बेद बचन मह लिप्त नर, तिनकी है यह रीति।
एहि[७] ते भिन्न न और कछु, बोलहिं मधुर अनीति।।४२।।

भोग अरु स्वर्ग सबै बिधि चाहत, कर्म फलन ते जन्म को मानत।
राजसुभोगहिं जेहि बिधि पावैं, तेहि हित बहु बिधि क्रिया बतावैं।।४३।।

---

५. रा. च. मा. उ. कां. दोहा ११९ परे
"कहेउ ज्ञान सिद्धान्त बुझाई।
सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई"।।

६. योग आरम्भ करके छोड़ दे तो किये हुए प्रयत्न का नाश नहीं होता यानी कभी न कभी वह नर उसको फिर शुरु करता है और जहाँ तक पहुँचा है उससे आगे बढ़ता है।

७. मुण्डक २/६-१०

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ।।४४।।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।।४५।।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।।४६।।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।४७।।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।४८।।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ।।४९।।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।५०।।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।५१।।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।५२।।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।।५३।।

राज अरु सुख मह लिप्त जो, बुद्धी दीन गँवाय।
ऐसे नर के हृदय मह, स्थिरमति योग न आय।।४४।।

[8]बेद बखानत तीन गुन, तीनहु को तू त्याग।
अलिप्त शुचि इच्छा रहित, आतम में रखु राग।।४५।।

[9]सागर समता कूप कब, पाइ सकै नरराय।
ज्ञान भये गुन गनिन मह, महिमा वेद घटाय।।४६।।

कर्म करन ते काम है, मत तू चाहै दाम।
फल हित मत तू कर्म कर, मत तू रह बिनु काम।।४७।।

योगी बनि कै कर्म कर, इच्छा देहु बहाय।
सिद्धि असिद्धी सम किये, समता जोग कहाय।।४८।।

बुद्धि योग ते कर्म अति, नीच गिनहु धनजीत।
बुद्धी की तू सरन ले, फल चंह मूरख, मीत।।४९।।

बुद्धि योग को पायके, पाप पुण्य दोउ जाय।
योगयुक्त बन जाय तू, जोग कर्म कुसलाय।।५०।।

बुद्धि युक्त जो होत है, त्यागि कर्म के फन्द।
जन्म के बन्धन काटिकै, पावहि पद निर्द्वन्द।।५१।।

बुद्धि तिहारी मोह भ्रम, जबै पार करि जाय।
श्रुत अश्रुत सब धर्म ते, तुरत विरागहिं पाय।।५२।।

श्रुति ते डाँवाडोल मन, जबहि ध्यान लगाय।
अचल समाधी को लहै, योग तबै तू पाय।।५३।।

---

८. रा. च. मा. आ. कां.
"कहिय तात सो परम विरागी।
तृणसम सिद्धि तीन गुन त्यागी''।।

९. मुंडक उपनिषद् इसका प्रमाण है।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।।५४।।

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।५५।।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।५६।।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५७।।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।५८।।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।५९।।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।६०।।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।६१।।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।६२।।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।६३।।

अर्जुन बोले

अचलबुद्धि जो ध्यानरत, ताको कौन निसान ।
बाणी, बैठ, अरु गमन की, वरनहु !ब्रिधिहिँसुजान ।।५४।।

श्रीकृष्ण बोले

मन ते उपजी बासना, तिनको देत निकार।
आपु में आपुहि रमि रहै, स्थिरमति ताहि पुकार ।।५५।।

दुःख मह मन नहिं दुःखहिं मानै, सुख मह मन में विरती आनै।
इच्छा क्रोध अरु भय को टारैं, ताको स्थिरमति मुनी उचारैं ।।५६।।

जो जन होवै नेह विनु मिलै शुभाशुभ जोहि ।
प्रेम वैर दोऊ तजै अचल बुद्धि है सोहि।।५७।।

जबही इन्द्रिन वश करी, तजत वासना जोहि ।
इन्द्रिन कच्छप जिमि छिपैं, अचलबुद्धि है सोहि ।।५८।।

मितभुक्ते विषयन हटैं, स्वाद तबहु रहि जाय ।
रसहू ताको तब तजै, "परम" जबै दरसाय।।५९।।

कुन्तीसुत सुनु बचनन मेरे, ज्ञानि करत है जतन घनेरे।
तबहू इन्द्रिन अतिबलवाना, बेगहि खैंचे मन मनमाना ।।६०।।

तिनको बांधि के योगरत, मो मह ध्यान लगाय ।
इन्द्रिन को निज बस करै, स्थिरमति सोहि कहाय।।६१।।

विषय ध्यान करि संग हो, संग ते उपजत काम।
काम शरीरहिं आइकै, तन हो कोह को धाम।।६२।।

क्रोध भये ते भ्रम नियराय, भ्रम के कारण स्मृती भुलाय।
स्मृती भुलाये बुद्धी नासै, बुद्धिनास ते आपु विनासै ।।६३।।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।६४।।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।६५।।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।६६।।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।।६७।।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।६८।।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।६९।।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।७०।।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ।।७१।।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।७२।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः।।

स्थिरमति इन्द्रिन बांधि के, राग द्वेष दोउ त्याग ।
विषयन माहीं भ्रमंत जो, शान्ति गहत बड़ भाग।।६४।।

शान्ति भये सब संकट नासै, बुद्धि तुरत थिर भाव विकासै।।६५।।

बिना योग बुद्धी नहीं, बिना योग नहिं ध्यान ।
बिना ध्यान चंचलमती, पावत नहिं कल्याण ।।६६।।

इन्द्रिन चहुँधा जो फिरैं, मन को लेंय फंसाय।
बुद्धि हरहिं, जिमि वायु चल, नद पर नाव बहाय।।६७।।

विषयन ते जो-इन्द्रिय टारै, ताकी बुद्धी समता धारै।।६८।।

सबही[10] जाको कहत निसि, तामह मुनिजन जाग।
जब ही जागत जगत सब, निसा मुनिन[11] तब लाग ।।६९।।

जदपि समुद्रहिं[12] जल भरैं, सागर अचल कहाय।
तेहि बिधि जाके हृदय में, कामको बेग समाय।।
तबहू जो जन सिन्धुवत्, स्थिर रह, हे मतिधीर।
शान्ति लहैं, सब भांति वह, कामी रहहिं अधीर।।७०।।

सबही इच्छा त्यागि कै, निस्पृह हो नरराय।
अहंकार ममता तजै, शान्ति लहै बिनुपाय ।।७१।।

ब्राह्मीस्थिति सोइ दशा कहावै, जाहि मिले पुनि भ्रम नहीं आवै ।
जामह अन्त समय जो रहहीं, पर निर्वाण सदा वे लहहीं ।।७२।।

द्वितीय अध्याय समाप्त

---

१०. रा. च. मा. आ. कां. दोहा ९२ पर
मोह निसा सब सोवन हारा देखिय सपन अनेक प्रकारा।
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी परमारथ प्रपंच वियोगी ।।

११. पश्यतः का अर्थ नहीं है।

१२. रा. च. मा. उ. कां. दोहा ११५ पर
पुरुष त्यागि सक नारिहिं जो विरक्त मतिधीर ।
न तु कामी विषयाबस विमुख जो पद रघुवीर ।।

।।कर्मयोगः।।

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।।१।।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ।।२।।

श्रीभगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।।३।।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।४।।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ।।५।।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।।६।।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।।७।।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।८।।

कर्मयोग

अर्जुन बोले

तेरी मति ते बुद्धि जदि, कर्मन ते अधिकाय ।
तौ मोको कटु कर्म मह, तुम क्यों देहु बझाय।।१।।

अटपट बचनन बोलि कै, लटपट मो मन कीन।
झटपट निश्चय बोलहू, होवैं हमहिं सुखीन।।२।।

श्रीकृष्ण बोले

अनघ कह्यो हम प्रथमहि बचना, अहैं लोक मह दोउ बिधि रचना।
ज्ञान योग जो सांख्य कहायो, कर्मयोग मह योगी आयो।।३।।

कर्मन मह बिनु हाथ लगाये, बन्धन ते कोउ छूट न जाए ।
कर्म को त्याग करै जो कोई, ताको सिद्धि न कबहूँ होई ।।४।।

कर्मरहित कोउ छिन भर नाही, प्रकृतिजनित गुन कर्म करांही ।।५।।

कर्मकि इन्द्रिन को वश कीना, मन[१] नित विषय वासना भीना।
सो जन मूढ़ अहै यह जानहु, दम्भ को रूप अहै यह मानहु।।६।।

जो जन मन ते इन्द्रिन बांधै, कर्म योग पुनि तिन ते साधै।
आपु असक्त रहै निस दीना, सो नर सब मह होय प्रवीना ।।७।।

नियमित कर्मनि तू करै, कर्म अकर्म तै नीक ।
निबहत नहिं बिनु कर्म के, गति शरीर की ठीक ।।८।।

---

१. रा. च. मा. उ. कां. दोहा १०२ पर

''मानस पुन्य होय नहिं पापा'' तुलसीदासजी का यह मतभेद है।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ।।९।।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।१०।।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमावाप्स्यथ ।।११।।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।।१२।।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।।१३।।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।।१४।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।।१५।।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।।१६।।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।।१७।।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ।।१८।।

बन्ध्यो कर्म ते लोक है, बांधे नहिं मखकाज ।
तेहि हित तू कर कर्म को, त्यागि संग को साज।।९।।

यज्ञसहित जब प्रजा बनायो, ब्रह्मा एहि बिधि नियम बतायो।
यज्ञ करे तो वृद्धी होवै, सुरभि समान तुम्हें फल दैवै ।।१०।।

देवन पालहु यज्ञ करि, सुर हों तव प्रतिपाल ।
दोउ परस्पर पालि के, गहै सुफल सब काल ।।११।।

यज्ञ सुपोषित देवगण, देंहिं भोग बहु भूप।
यजन बिना जो भोगहीं, ते नर तस्कर रूप ।।१२।।

सब पाप छुटैं उन सन्तन के, जिन[२] यज्ञप्रसाद को पावत हैं ।
निज पेट के अर्थ जो अन्न रचैं,तिन पाप को ढेर बढ़ावत हैं ।।१३।।

कर्महि[३] यज्ञ रचावन हार, यज्ञते बर्षे जल की धार।
वर्षा अन्न को सिर्जन हार, ताते प्रानिन होहिं अपार ।।१४।।

कर्महि[४] उपजत ब्रह्म ते, ब्रह्मजनक अबिनास ।
घट घट व्यापी ब्रह्म नित, करत यज्ञ में वास ।।१५।।

जो जन त्यागै चक्र यह, विषय भोग मह भीन।
पापी जीवन ताहि है, वृथा जन्म वो लीन ।।१६।।

आतम मह जो मनहि लगावै, तृप्ती तोष दोउ तंह पावै ।
ऐसे नरके सबही काज, अन्त होंय सुनहु नरराज ।।१७।।

काज किये कोउ अर्थ नहीं, काज बिना नहिं हान।
कोऊ ते कोउ काज की, राखत चाह, न ध्यान ।।१८।।

---

२. मनुस्मृति श्लोक ११८, २ अध्याय
"यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते"।

३. मनुस्मृति अध्यायश्लोक ७६ अग्नौ प्रास्ताहुतुः सम्यग्, आदित्यम् उपातिष्ठते, आदित्याज्जायते वृष्टिः, वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।

४. आगे कहा है कि ब्रह्मा ने सब यज्ञों को बताया है अ. ४ श्लो. ३२ एवम् बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे। अविनाशी से ब्रह्मा, ब्रह्मा से यज्ञ, यज्ञ से कर्म, तब वृष्टि, तब अन्न, तब प्रज्ञा।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।।१९।।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ।।२०।।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।२१।।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।२२।।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।२३।।

उत्सीदेयुरिमे लोकाः कूर्यां कर्म न चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ।।२४।।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ।।२५।।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ।।२६।।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते।।२७।।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।।२८।।

इच्छा रहित करहु नित कामा ।
ऐहि बिधि किये मिलै परधामा।।१९।।

जनकादिक करि कर्म को, गह्यो सिद्धि पद धाम।
जग की रक्षा करन हित, तोहू कर अब काम।।२०।।

जैसो कर्म करें बड़ लोगू, दीनहु सोई जानै जोगू।
जो कछु को वह श्रेष्ठ बतावैं, लोक सबै सोई मारग धावैं ।।२१।।

पारथ सुनु त्रैलोक मह, करनि कछू मोहिं नाहिं।
लहन जोग सबही लह्यो, तबहूं कर्म कराहिं।।२२।।

फेट कसै नित काज मह, जो मै मन नहिं देउं ।
काज करन सबही तजैं, सोइ मारग धरि वेउ।।२३।।

जो मैं कर्म को त्यागौ आजू, नास होय पुनि सकल समाजू ।
संकरता को इहाँ बुलावो, सकल प्रजा को नास करावों ।।२४।।

कर्मफन्द फंसि मूढ़ जन, काज करें दिन राति।
सुबुद्धि करे, तेहि त्यागि कै, जगत भलाई, तात ।।२५।।

फलाशा लगाये करै कर्म जेही, नहीं ज्ञान का भेद देवो तिनेही।
सुबुद्धी, उन्हें प्रेरि, कर्में करावे, करै आपु सोही, लिये योग भावे।।२६।।

प्रकृति जनि तजौ गुन अहैं, वे ही कर्म कराय।
मूरख दम्भी पुरुष जे, करता आपु गनाय ।।२७।।

गुण[5] अरु कर्म विभाग को, जानत जो सब रीत ।
गुन, गुन माही रमत है, जानि तजै सब प्रीत ।।२८।।

---

५. यदि अर्थ "गुन निज क्षेत्रिन में रमै" किया जाय तो अधिक स्पष्ट हो। तिलकजी। गुण और कर्म मुझसे भिन्न हैं और गुणों का यह परस्पर खेल हैं यह तत्त्व जान कर ज्ञानी मन हटा लेता है।

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्।।२९।।

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।३०।।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।।३१।।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः।।३२।।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।।३३।।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।३४।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।३५।।

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।३६।।

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।३७।।

प्रकृति गुनन में मुग्ध जे, गुन कर्महि फंसि जाय।
ऐसे मूढ़ कें ज्ञानिजन, बुद्धि न दें विचलाय ॥२९॥

काज सबै मोहिं अर्पि दे, चेति अध्यातम ज्ञान।
लोभ मोह सब त्यागि तू, युद्ध करै बिनु मान ॥३०॥

प्रेम सहित मम बचन जो मानै।
तिन भक्तन के सब कर्म नसाने ॥३१॥

मम बचननि जो दोष बतावैं।
मूढ़ अबुध वे अवश नसावैं ॥३२॥

जैसी जाकी प्रकृति है, करै सो तैसो काम।
ज्ञानिहुँ, पथ यह अनुसरै, रोक सकै नहि थाम ॥३३॥

प्रेम बैर दोउ होत है, इन्द्रिन विषयन बीच।
तजहु दूर इन दोउ ये, राह बिगारहिं नीच ॥३४॥

गुणहीन स्वधर्महिं नीक अहै, भलकीन विधर्महिं बड़ो न मान।
मृत्यु भलो निज धर्महिं में, परधर्म सदा दुख देत सुजान॥३५॥

अर्जुन बोले

पाप करै केहि कारनै, सो तुम देहु बताय।
बिनु इच्छा पापहि रचै, प्रबल प्रेरना पाय ॥३६॥

श्रीकृष्ण बोले

काम कोह दोउ या के नाम, रजगुण ते ये जन्मत जान।
सबही नासत, दूषित करहीं, रिपु को रूप यहाँ ये धरहीं ॥३७॥

---

६. रा. च. मा. आ. कां. दोहा ९ पर
"निज निज कर्म निरत श्रुति नीती"
यहाँ प्रकृति जनित कर्म श्लोक ३३ और परम्परा जनित जाति कर्म में भेद हो जाता है।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।।३८।।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।३९।।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।।४०।।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।।४१।।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।४२।।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।।४३।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः।।

धुँआ लपेटे आगि जिमि, मल जिमि मुकुर छिपाय ।
गर्भहिं राखत चर्म जिमि, प्रानिन ये लिपटाँय।।३८।।

ज्ञानिके होयँ सदा ये बैरी
राखहिं ज्ञान सदा ये घेरी।
इच्छारूप धरहिं ये नाना
सदा अतिर्पित अगिनि समाना ।।३९।।

इन्द्रिय मन अरु बुद्धि में, राखत ये निज बास ।
देहि को ज्ञान लपेटि के, भ्रम को करहिं प्रकास ।।४०।।

सो तू भारत प्रथम अब, इन्द्रिन निज बस लेहु ।
ज्ञान विज्ञानहिं हनत जो, पापिन दोउ हनि देहु ।।४१।।

इन्द्रिन महता सबही जानै
ताते मन, तब बुद्धि बखानै।
बुद्धिहु ते जो महत कहावै
बुद्धि परे निज बास रखावै।।४२।।

ताको एहि बिधि ज्ञान लहि, रोकहु आपु ते आप।
इच्छारूप दुरन्त रिपु, ताको नासहु दाप ।।४३।।

तृतीय अध्याय समाप्त

---

७. इन्द्रियें बाह्य वस्तुओं से श्रेष्ठ होती हैं क्योंकि बाह्य का ज्ञान इन के द्वारा होता है।

.४.

।।ज्ञानकर्मसंन्यासयोगः।।

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।१।।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।।२।।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।३।।

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।४।।

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।५।।

अजोऽपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।।६।।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।७।।

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

श्रीकृष्ण बोले

विवस्वान कुँ मैं जोग बतायो ।
सो मनु, मनु इक्ष्वाकु, सिखायो ।।१।।

एकते एकहिं यो मिल्यो, राज रिखिन यह योग।
काल महत के फेरते, लुप्त भयो सो जोग।।२।।

सोहि पुरातन योग बतावहुँ ।
भक्त हमारो तुमहिं सिखावहुं।।३।।

अर्जुन बोले

पीछे तेरो जन्म है, प्रथम विवस्वत आय ।
सो हम कैसे मान लैं, तुम तेहि दीन बताय ।।४।।

श्रीकृष्ण बोले

जन्म अनेकन हम - तुम लीना ।
हमहिं स्मरण सब, तुमहिं बिलीना ।।५।।

जन्मरहित अरु अमर मैं, सबही को करतार।
प्रकृति आपनी पैठि मै, निजबल लूं अवतार।।६।।

जब जब जगतें धर्म बिलीना।
पाप बढ़्यो तब जन्महिं लीना ।।७।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।८।।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।९।।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।।१०।।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।११।।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं
यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके
सिद्धिर्भवति कर्मजा।।१२।।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।१३।।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।१४।।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।।१५।।

किं कर्म किमकर्मेति
कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि
यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।१६।।

साधु[1] जनन रक्षा करन, पापिन नासन कार ।
धर्म के राखन हेत मै, जुग जुग लूं अवतार।।८।।
दैवी जन्म अरु कर्म हमारे, जो जन जानै सबहि प्रकारे ।
त्यागि देह पुनि जन्म न पावे, अर्जुन सो नर मो मह आवे ।।९।।
लोभ क्रोध अरु भय बिसराय, मो मह मन दे मोहि सरनाय।
बहु जन ज्ञानतपस्या कीना, मो मह सुद्ध भये अवलीना।।१०।।
जेहि[2] बिधि जो मोहिं गहत हैं, गहौं ताहि तेहि रूप।
मेरो मारग नर लहैं, सबै और हे भूप ।।११।।
कर्म कि सिद्धी जो इह चाहा, देवन पूजहिं सुनु नरनाहा ।
मानुष लोक में तुरतै आवत, कर्मजनित जो सिद्धि कहावत ।।१२।।
गुण अरु कर्म विभाग करि रच्यो वर्ण मैं चार ।
अघट अकर्मा जदपि मैं इनको मैं करतार ।।१३।।
कर्म के फलते करों न प्रीती, कर्म न बाँधत मोहिं कोउ रीती।
एहि बिधि मोको जो कोई जानै, ताकै कर्मन फन्द नसाने।।१४।।
मुक्ती हेरत पितृजन, यहै जानि नर राज ।
कर्म कियो, सोइ तू करै, पुरुखन कीन जो काज ।।१५।।
कर्म कवन अरु कवन अकाम,
ज्ञानि को ज्ञान करै नहि काम, ज्ञानिहु बूझन में लपटान ।
कर्म बतावौ तोहिं मैं बीरा, जाको जानि हटै सब पीरा ।।१६।।

---

१. रा. च. मा. ल. कां. दोहा १०९ परे
जब जब नाथ सुरन दुख पाये। नाना तनु धरि तुमहिं बसाये।।
रा. च. मा. वा. कां. दोहा १२५ परे।
जब जब होय धर्म की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइनहींबरनी। सीदहिं धेनु विप्र सुरधरनी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन-पीरा।।
२ रा. च. मा. बा. कां. दोहा २४५ परे
"जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी"

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।१७।।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।१८।।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ।।१९।।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः।।२०।।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।।२१।।

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।२२।।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।।२३।।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।२४।।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।।२५।।

कर्माकर्म विकर्म को, ज्ञान गहौ मति धीर ।
इनकी गति गहिरी अहै, जानहु हे नरवीर ।।१७।।

निरखि अकाजहिं काजमें काजहिं निरखि अकाज।
ज्ञान, जोग, नर वे गहैं जदपि करैं सब काज।।१८।।

जाके सबहीं काज हैं, मोह अरु इच्छा हीन ।
कर्म दहै ज्ञानाग्नि ते, पंडित सोहि प्रवीन ।।१९।।

कर्म फलन को त्यागि के, तृप्त निराश्रय होय ।
यद्यपि कर्मन को करै, कर्म रहित वह होय ।।२०।।

चित अरु आतम बांधि कै, आसरहित सब त्यागि ।
देह[४] ते केवल कर्म करि, गहै न पाप को भाग ।।२१।।

जाहि मिलै ताते सुखी, त्यागि सबै दुख द्वन्द ।
डाह बिना सम[५] भाव रखि, कर्म करै बिनु फंद ।।२२।।

सबै संग त्यागै, मनै योग लागै, धरै ध्यान को जो सदा ज्ञान माहीं।
करै कर्म जेते सबै यज्ञ हेते, सबै फन्द ताके तुरन्तै नसाहीं ।।२३।।

ब्रह्महि होता, अर्पण ब्रह्म, ब्रह्म हवी अरु आंच ।
ब्रह्म कर्म महँ लीन जे, पावै ब्रह्महिं सांच ।।२४।।

कोउः उपासक यज्ञ ते, दैव उपासन कीन ।
ब्रह्म अग्नि महँ यज्ञ[६] को, कछुक हवन करि दीन ।।२५।।

---

३. गहन शब्द का अर्थ "गुप्त" भी होता है।

४. प्रश्न—देह से कर्म तब ही होगा जब मन से प्रेरणा होगी। निग्रह और प्रेरणा मन द्वारा होती है। इसलिए देह सम्बन्धी कर्म भी मन न होने से रुक जाना चाहिये। यदि अर्थ देह सम्बन्धी कर्म याने शौच भोजन स्नान मात्र से है तो भी अर्थ वही बैठता है। मानसिक और शारीरिक प्रेरणा यहाँ भी रहेगी।

५. काम की सफलता और असफलता दोनों हाल में समबुद्धि हो।

६. अर्थ कठिन है, यहीं बात समझ में आती है कि यज्ञादि से जो फल प्राप्त हैं वह फल भी ब्रह्म को चढ़ा देते हैं। स्वयं पूर्ण निष्काम होते हैं ऐसा करने से आत्मा और परमात्मा का भेद-भाव हट जाता है।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।।२६।।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।।२७।।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।।२८।।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।२९।।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।।३०।।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।।३१।।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे।।३२।।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।३३।।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।३४।।

[७]संयम अग्नी जारिकै इन्द्रिन दीन चढ़ाय।
कछु जन इन्द्रिय अग्नि महँ विषयन दै अर्पाय।।२६।।

योग अरु संयम अग्नि जो प्रकट ज्ञान ते कीन।
तामहँ इन्द्रिय प्राण के कर्म हवन करि दीन ।।२७।।

धन अरु तप अरु जोग कै यज्ञ करैं बहु लोग।
केते ज्ञान 'रु पाठ के दृढ व्रत करहिं प्रयोग ।।२८।।

अपान में प्राण को छोड़ दिया अरु प्रान में होम अपान रहै।
गती[८] तिन दोउ कि रोक दई अरु जोग को मारग योंहि
लहै।।२९।।

कछु अन्न नियमित खाइकै [९]प्राणबली प्राणहि करै।
यज्ञ विधिन को जानि कै यज्ञ मह पापहिं परिहरैं।३०।।

यज्ञप्रसादिको पावत जे तिन लोग निरन्तर मुक्ति गहा।
बिनु यज्ञ सधै यह लोक नहीं तो मिलै तुमको परलोक कहाँ ।।३१।।

बहु बिधि यज्ञ ब्रह्म रचि दीन्हा ये सब कर्म ते जन्म को लीना।
ज्ञान यहै जब तोको आवै मोक्ष निरन्तर तब तू पावै।।३२।।

सुनहु परन्तप वचन मम धन मख ते मख ज्ञान।
श्रेष्ठ कहै, सब ही करम अन्त लहैं बिच ज्ञान ।।३३।।

सेवा पूजा प्रथम करि पूछहु हे नरवीर।
ज्ञान को तोहि बताइहैं सतदर्शी मुनिधीर ।।३४।।

---

७. संयम बल से बाह्य वस्तु बाहर रख कर मनुष्य ईश्वर आराधना कर सकता है। कुछ मनुष्य इन्द्रिय रुपी अग्नि, जैसे श्रवणेन्द्रिय में शब्द यानी भजन कीर्तन डाल कर भी ध्यानावस्थित होते है।

८. कुम्भक करना।

९. रा. च. मा. उ. का. दोहा १०२ चौपाई ५। कलजुग जोग न जग्य, न ज्ञाना...
नोट : इस मत से कलजुग में मुक्ति नहीं रही। गीता यज्ञ आवश्यक कहती है।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि।।३५।।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।।३६।।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।३७।।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।३८।।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।३९।।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।४०।।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।।४१।।

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ।।४२।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः।।

यह ज्ञान लहै पुनि मोह न आवै।
मोसम सब जग आपु में पावै ।।३५।।

पापिन महँ बड़ नाम जो धारै।
ज्ञान कि पंसुइ तो को तारै ।।३६।।

पावक जेहि बिधि इन्धन जारे।
ज्ञानहु सोइ बिधि कर्मनि मारे ।।३७।।

ज्ञान ते सुब्द्ध नहीं जग माहीं।
सिब्द्धहु समय भये सोई पाहीं ।।३८।।

श्रब्द्धायुत तत्पर भये इन्द्रिन बन्दि बनाय ।
ज्ञान लेंहि, तव बेगही शान्ति महा वह पाय ।।३९।।

जे जन ज्ञान अरु भक्ति बिहीना। संसय ते निज नासहि[१०] कीना ।
इह लोक नहीं परलोक न पावें। संसित जन सुख हीन कहावें।। ४०।।

योग ते कर्मनि त्यागि के, ज्ञान ते संसय मार।
आत्मबसी नर होत है, कर्म बन्ध के पार।।४१।।

अज्ञान जनित संसय मन माहीं। ज्ञान कृपान ते काटहु ताही ।
योग में बास करौ नित वीरा। उठहु अबै तजि के मन पीरा।।४२।।

चौथा अध्याय समाप्त

---

१०. प्रश्न— क्या संशयात्मा का नाश हो सकता है? यह नाश शब्द ठीक नहीं है। ऐसी आत्मा अधिक दुख भोगेगी। संशय करना भी आत्मा के उत्थान की एक सीढ़ी है।

।।कर्मसंन्यासयोगः।।

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।।१।।

श्रीभगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।।२।।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।।३।।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।।४।।

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।।५।।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति।।६।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।।७।।

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्।।८।।

कर्मसंन्यासयोग

अर्जुन बोले

कबहुँ अधिक संन्यास बतावहु, कबहुँ जोग प्रशंसा गावहु।
दोउमें उत्तम होवै जोई, थिर करि मोहिं बतावहु सोई।।१।।

श्रीकृष्ण बोले

यद्यपि दोउ अहै सुखदाता। कर्मयोग बड़ कीन विधाता।।२।।

इच्छा द्वेषहिं त्यागि के, द्वन्द्व भाव सब खोय।
सहजै बन्धन काटिकै, सदा जोगरत होय।।३।।

पंडित दोउन[1] एक कहें, बालक मानहिँ भेद।
एकहु पथ के अनुसरे, दोउन को फल लेत।।४।।

सांख्य पंथ से जो गति पावै, योग करै ते सोही आवै।
एकै रूप जो दोउ निहारा, सब मह सोई दीखन हारा।।५।।

बिना योग संन्यास मग, नरनि दुःख बहु देत।
योग करैं जे मुनिन वे, तुरत ब्रह्म को लेत।।६।।

योग-पूर्ण मनसुद्ध नर, इन्द्रिन आतम बांधि।
सब जीवन को जीव बनि, कर्म करै बिनु व्याधि।।७।।

इन्द्रिन के सब कर्म को, निद्राहार, गमन, अरु स्वास।
जोगी तत्त्व विचारि कै, "करौं न कछु मैं" कहत हैं।।८।।

---

१. सांख्य और योग।

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।।९।।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।१०।।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ।।११।।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ।।१२।।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ।।१३।।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।१४।।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।।१५।।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।।१६।।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ।।१७।।

नयन, जीह, जबही चलैं, लेन-देन सब माहिं ।
"इन्द्री बस्तुन मह रमैं" सदा यही, वे ध्याहिं ।।९।।

ब्रह्महिं अर्पण करि करै, सबै कर्म बिनु चाह ।
सो नर पापन ते रहित, पंकज जिमि जल माह।।१०।।

संग त्यागि के मुनिन सब[२], आतम सोधन हेत ।
इन्द्री, मन, बुधि, काय ते, कर्मन को करि देत।।११।।

शान्ति निरन्तर वो जन पावे, कर्म फलन तजि जोग जगावे ।
इच्छा त्यागि न देवै जोही, कर्म फलन को बन्दी सोही।।१२।।

कर्म बिहीन मनहिं जो कीना, देही रहत सदा सुख भीना।
करै करावे कछु नहिं काजा, नव[३] द्वार पुरि मह बसत अकाजा।।१३।।

रचना कारण, कर्म की, फल अरु कर्म को मेल ।
रच्यो नहीं जग को प्रभु, हैं स्वभाव के खेल ।।१४।।

काहू को नहिं पुन्य ले, काहू को नहिं पाप।
ज्ञान घिर्‌यो अज्ञान से, भ्रम ले जीवहिं ढांप।।१५।।

ज्ञान को दीपक जारि कै, अपन अबुद्धि नसाय ।
रवि सम तिनको ज्ञान पुनि, ब्रह्महिं देत दिखाय ।।१६।।

ताहि को ध्यावै तामह लीना, तामह लाग्यो तामह भीना ।
ज्ञानते सबही पाप जराय, जाय जहां से फिर नहीं आय ।।१७।।

---

२. प्रश्न— क्या यह हो सकता है? जब मन कर्म करना चाहता है तब इन्द्री काय इत्यादि कर्म करते हैं। इसलिये संग बना रहता है। संग त्यागने से इन्द्री गोचर में नहीं जाती और कर्म रुक जाता है। सम्भवतः यहाँ उन्हीं कर्मों से मतलब है जो शरीर रक्षा के अर्थ नियमित है, जैसे मलत्याग स्नान भोजन इत्यादि। इनका तो कर देना आवश्यक है पर सांसारिक विषयों से इन्द्रियों और मन को हटाय कर सदा एक ब्रह्म ही का चिन्तन करना आत्मशोधक के लिये जरूरी है।

३. नव द्वार पुरी यह देह है २ आँख २ कान २ नासारन्ध्र मुख गुदा और मूत्रेन्द्रिय नव द्वार है।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।।१८।।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ।।१९।।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ।।२०।।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ।।२१।।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।।२२।।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ।।२३।।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ।।२४।।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ।।२५।।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।।२६।।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ।।२७।।

गुणपूरित ब्राह्मण विनयी, हाथी गौ अरु स्वान।
अछुत सबै पंडित सुघड़, जानत[४] एक समान ।।१८।।

समता मह जो स्थिर रहैं, पुनर्जन्म नहिं पाँय।
''ब्रह्म निदोख अरु सम अहै'' तामह वे स्थिति पाँय ।।१९।।

ब्रह्म जानि कै तामह लीन, स्थिर मति नर जो अहैं प्रवीन।
सुख को पाय न सुख की मानै, दुख के भये न दुख मन आनै।।२०।।

बाह्य वस्तु मह मन नहीं, आपुहि में सुख पाय।
लीन ब्रह्म मह जोग करि, सुख अनन्त मह जाय ।।२१।।

स्पर्श जनित जो सुख अहैं, वे हैं दुःख की खान।
उनको अस्थिर जानि कै, दूर रहत मतिमान ।।२२।।

काम क्रोध के वेग को, इहहीं जो सहि जाय ।
तन त्यागन के प्रथम ही, योग अरु सुख को पाय ।।२३।।

रमत सुखी निज हृदय में, तहहीं तेज जगाय ।
ब्रह्म होय वह जोगि तब, ब्रह्म गती में जाय ।।२४।।

पर उपकारहिं रत सदा, द्वैधीभाव नसाय ।
पापछीन जोगी तबै, ब्रह्म धाम को जाय ।।२५।।

यतिजन मन को जीति कै, काम क्रोध को मार ।
आपुहि को पहिचान कै, गहिहैं शान्ति अपार ।।२६।।

बाहर की जो वस्तु है, तिनको छूत हटाय ।
नैन निरन्तर रखत है, भौंहन बीच लगाय ।।
स्वासा प्रान अपान दोउ, चलै जो नासा माहिं।
समगति तिनकी बाँधि कै, जोग जगावन जांहि ।।२७।।

---

४. रा. च. मा. अं. कां. दोहा

'ज्ञान मान तह एकौ नाहीं, देख ब्रह्म समान सब माहीं'

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ।।२८।।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।।२९।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः।।

मुक्ती चाहत जो मुनि लोगू, क्रोध तजहिं भय, इच्छा रोगू।
सदाबुद्धि मन इन्द्रिन बाधै, ऐसे मुनिगन मुक्ती साधै।।२८।।

जपतप को मोहिं भोगी जानै, सकल जगत को ईशहु मानै।
मोहि सबन को हितू बिचारै, सो नर पावहि शान्ति अपारै।।२९।।

पंचम अध्याय समाप्त

.६.

।।आत्मसंयमयोगः।।

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।।१।।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ।।२।।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।।३।।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।।४।।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।५।।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।६।।

आत्मसंयमयोग

श्रीकृष्ण बोले

कर्म फलन को त्यागि के, काज करै जो कोइ ।
जोगी ताहि बखानिये, है संन्यासी सोइ ।।
जो नर काज अरु अग्नि[१] को, देत वृथाही त्याग ।
सो संन्यासी है नहीं, जोग न ताको जाग ।।१।।

संन्यास जो है वही योग जानो ।
बिना[२] त्याग योगी न होवै ये मानौ ।।२।।

जोग को साधन जो मुनि चाहैं, ताको कारण कर्म[३] बतावैं।
जो जन जोग में पूरण जानौ, शमता ताको कारण मानो।।३।।

विषयन[४] मह अरु कर्म मह, राखत है नहिं प्रीति ।
सबै संकल्पन तजत जो, जोगी ही मन जीति ।।४।।

आपु उबारै आपु को, अपुनो करै न नास ।
आपुहिं अपनो मित्र है, आपुहिं हैं रिपु पास।।५।।

जो जन आपु ते आपुहिं जीता, सोही अपनो मित्र पुनीता।
आपुहिं जीति सकै नहिं जोही, अपुनो शत्रु रहै नित सोही।।६।।

---

१. पंचाग्नि, नचिकेत अग्नि, अग्निहोत्र वगैरह, तपस्वियों और गृहस्थों के लिये भिन्न भिन्न रूप में हैं।

२. शरीर सम्बन्धी इच्छा का त्याग ही त्याग है। ऊँची वासनाओं का, ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान, या तप की इच्छा का त्याग नहीं किया जाता।

३. यहाँ फलत्याग, कर्म से मतलब है।

४. प्रीति न करना भी एक संकल्प है परन्तु कुछ समय के बाद उधर ध्यान न देना भी स्वाभाविक हो जाता है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।७।।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।।८।।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ।।९।।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।।१०।।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।११।।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।।१२।।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।१३।।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।।१४।।

आत्म विजित नर शान्त हो, लखत सबै समरूप ।
शीत, उखम, सुख-दुख दोऊ, मान अपमानहु भूप ।।७।।

युक्त कहावत जोगि वह, जो सब इन्द्रिन बाँधि।
सिला समानहि स्थिर रहै, ज्ञान को मारग साधि ।।
विद्या बहु बिधि पाइके, आत्म सुखी जो होय ।
जाके मन एक भाव रज, सोन सिला सब होय ।।८।।

शत्रु मित्र अरु सुहृद अजान[५], बन्धु बिचवई विपरीत समान ।
भलौ बुरौ सब गनै समान, सोही नर को बड़ो बखान ।।९।।

जोग जगावे जहं जग निर्जन, आसा लोभ को करिके मर्दन।
अपुनो चित्त जतनते बांधै, संग सबै तजि साधन साधै।।१०।।

देस सुची थिर आसन, करु अति ऊंच न नीच ।
वस्त्र अजिन[६] अरु कुंस तह, दीजै आसन बीच ।।११।।

ऐसो आसन बैठि के, चित्त अरु इन्द्रिन जीत ।
निज सोधन जोगहिं तजै, मन इकत्र करि मीत।।१२।।

शिर ग्रीवा अरु काय को अचल सीध में धारि ।
नासा नोकहिं नयन नित, निरखै दिसन विसारि।।१३।।

सन्तोखी अरु निडर है, ब्रह्मचर्य व्रत कीन ।
मन सम्हारि मोको भजै, मो मह हो लवलीन।।१४।।

---

५. इन भिन्न भावों के कारण अपनी बुद्धि को विचलित न होने दें।

६ चर्म : कुछ लोगों का मत है कि ब्राह्मण कुशासन पर बैठें, क्षत्रिय चर्म पर और वैश्य वस्त्र के आसन पर। एक मित्र ने इस पर अपना निर्णय जो बताया सो प्रशंसनीय है। उनका कथन है कि कुश सर्वत्र होता है चैल सदैव मनुष्य मात्र शरीर पर रखता है और अजिनसे तो स्वयं शरीर वेदित रहता है सो योगी को बीने कुशासन की या हत्या द्वारा प्राप्त मृगचर्म की दरकार नहीं है। गृहों में शहरों में रहने वाले चर्म इत्यादि आसन भले ही बनवावें क्योंकि वहां पर प्रकृति रचित दूर्वापूरित भूमि नहीं होती।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।।१५।।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।१६।।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।१७।।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा।।१८।।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः।।१९।।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।।२०।।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।२१।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।२२।।

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।२३।।

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।।२४।।

जोगी मन को नियत करि, मो मह आपु लगाय ।
मोते प्रकटी शान्ति अरु, सुखहु अनूपम पाय ।।१५।।

भोजन अरु उपवास में, नींद जागरण माहिं ।
अति को कभी न कीजिये, अति ते जोग नसाहिं।।१६।।

अहार बिहारहिं काज सबै, अरु नींद सुचेतहु युक्त करै।
जोग यहै सब दुखहि मारत, युक्त भये सब दुख टरै।।१७।।

जबै चित्त बन्दी सदा आपु ध्यावै ।
बिना लोभ, योगी तबै वो कहावै ।।१८।।

दीप[७] शिखा बिनु वायु के रहै सदा थिर काय ।
तैसोइ जोगी जोगरत आतम योग जगाय ।।१९।।

मन जहँ थिरता लेत है, साधि जोग को भाय।
आपुते आपुहि जानिके, आपुहि में हरषाय ।।२०।।

परमानन्दहु ताहि कहावै, बुद्धि गहै पर इन्द्रि न पावै।
जामह जबही स्थिति मिल जावै, तत्त्व न छूटै, कोऊ भावै।।२१।।

ताहि समान लाभ नहिं दूजा, जाको पाय तुच्छ सब, बूझा।
जामह थिर हो सदा बिहारै, दुःख दुरन्तहु ताहि न टारै।।२२।।

जोग कहत हैं ताहि को, दुःख करत जो दूर ।
निश्चय मति से साधिये, मन लगाय भरपूर ।।२३।।

मनते उपजहिं कामना, तजहुँ तिनहिं सब भाँत।
मनते इन्द्रिन को सबै, बाँधहु चहुँदिसि तात।।२४।।

---

७. विजयानन्दजी का. रा. च. मा. उत्तर कांड, सोरठा ११९. दोहा १२८ तक ज्ञानदीप का वर्णन हैं।

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।।२५।।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।२६।।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।।२७।।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ।।२८।।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।२९।।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।३०।।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ।।३१।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।।३२।।

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ।।३३।।
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।३४।।

थीर भरी बुद्धी धरै, थीरज से सम भाव ।
मन को बांधिकै आपु मह, त्यागै सबै लगाव ।।२५।।

चंचल मन जो चहुँ दिसि भागत ।
ताहि हँकारि के पुनि बस लावत।।२६।।

पाप रहित अरु शान्त मन, ब्रह्म रूप को पाय ।
जोगी रजगुण रोकि कै, पावत सुख समुदाय ।।२७।।

नित साधन ते सब पाप नसावत ।
ब्रह्ममिलन सुख, सुख ते पावत।।२८।।

योगयुक्त जो नर रहै, निरखत सबहि समान ।
सब को पावत आपु मह, आपु रहै सब स्थान ।।२९।।

सब मह मोको, मोमह सबहीं ।
निरखि, गहत दृढ़, तजौ न तिनहीं।।३०।।

सब मह स्थित सोहि भजत जे, मो मह दै के ध्यान।
मो मह वे नितहीं बसै, रहैं चहै जेहि बान।।३१।।

आतमतुल्य सबै जो ध्यावै, सुख दुख में कोउ भेद न पावै ।
निरखत सबहीं समता भावै, अर्जुन वो रिषिराज कहावै।।३२।।

अर्जुन बोले

समता को जो जोग वह, आपु दियो बतराय ।
चंचलता के वश भये, ताकी स्थिरता जाय ।।३३।।

मन बलिष्ठ बहु वेग ते, भागत है चहुं ओर ।
ताहि सम्हारन अति कठिन, वायु वेग सम घोर।।३४।।

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।३५।।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।३६।।

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।।३७।।

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि।।३८।।

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।।३९।।

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।४०।।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।४१।।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।।४२।।

श्रीकृष्ण बोले

मन अस्थिर तुम सत्य बखानहु।
विराग-अभ्यासहिते बस आनहु ।।३५।।

मन पर जाके वश नहीं, ताको मिलै न जोग ।
मन वश करि जो साधते साधि सकैं वे लोग।।३६।।

अर्जुन बोले

चंचल मनके कारनै, सिद्धि जाहि नहीं होय ।
श्रद्धापूरित तबहुँ है, तिनकी गति का होय ।।३७।।

जो जन है प्रभु थिरमति हीना, माया ते पथ ब्रह्म बिहीना।
ऐसो जन दोउ मार्ग बिलीना, मेघखंड जिमि होवै छीना।।३८।।

तो सम संशय नासक नाहीं, नाशहु संशय पूर्ण विधांही।।३९।।

श्रीकृष्ण बोले

इह लोक में परलोक में नास पावत वो नहीं।
कर्म पुन्यनि जो करै दुर्गती को लै नहीं ।।४०।।

सो नर[८] पहिले स्वर्ग में, बास करै बहु काल ।
योग भ्रष्ट पुनि जन्म ले, सुद्ध कुलन मह बाल ।।४१।।

अथवा पंडित जतिन मह, जाय जन्म को लेय ।
ऐसे दुर्लभ जन्म को, बिधिना बिरलहिं देय ।।४२।।

---

८. यह बात नवें अध्याय के श्लोक २० और २१ में सविस्तार कही है।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।४३।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।।४४।।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।।४५।।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ।।४६।।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ।।४७।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः।।

प्रथम जन्म की बुद्धी पावत ।
सिद्धि हेतु पुनि जोग बढ़ावत।।४३।।

पूर्व जन्म की साधना, ताहि खैंच ले जाय ।
जोग[९] को जानन जो चहत, शब्द ब्रह्म तरि जायँ ।।४४।।

बहु बिधि जोगी जतन करि, नासि पाप सब रूप ।
बहु जन्मन मह सिद्ध करि, पावत गती अनूप।।४५।।

तपते[१०], ज्ञान अरु कर्म ते, जोग रहत अधिकाय ।
सो अर्जुन एहि कारनै, जोगी तू बनि जाय ।।४६।।

जोगी पूर्ण कहाय, श्रद्धा ते मोको भजै ।
मो मह नित्य लगाय, अपनी अन्तर आत्मा ।।४७।।

षष्ठ अध्याय समाप्त

---

९. तिलकजी इसका अर्थ "वेद वचन" करते हैं, इससे मतलब यह निकलता है कि खोजने वाला शनैः शनैः वेदआज्ञा से पार हो जाता है।

१०. योगी अर्थात कर्मयोगी और तपसी यानि संन्यासी में अन्तर है।

।।ज्ञान-विज्ञान-योगः।।

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ।।१।।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।२।।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।३।।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।४।।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।५।।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।६।।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।७।।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ।।८।।

ज्ञान-विज्ञान-योग

श्रीकृष्ण बोले

मो मह मन दै सरन सुलीनै, साधि जोग बिनु संशय चीन्है ।
सब विधि आपुहिं तोहि बतावौं, मन दै सुनु मैं तोहि सुनावौं।।१।।

ज्ञान विज्ञान सबै हम कहही, जाहि जानि कछु सेस न रहही।।२।।

नर[१] समूह मह कोउ इक, सिद्धि को साधन चांहि ।
सिद्धन महहू कछुक हीं, मेरे मर्म को पाहिं ।।३।।

अनिल अनल जल भूमि अकासू ।
इन संग मन, अरु, बुद्धि विकासू ।
अहंकार मिल आठ गिनावै, मम प्रकृति के भाग कहावै ।।४।।

अपरा प्रकृति यही बखाना, ताते उच्च परा को माना ।
जो बनि जीव सबै जग माही, जग को धारत यहै सदाही ।।५।।

सब को गर्भ इन्हें तुम जानहु ।
मोहि जग जन्म को नासक मानहु।।६।।

मोते अधिक न कछु जग धारहिं ।
मो मह पिर्‌यो रतन जिमि तारहिं ।।७।।

जल मह रस रवि चन्द्र प्रकासा, वेद में ओं अरु शब्द अकासा।
नर मह नरता जाहि बखाना, सोही मैं हौं तहां समाना।।८।।

---

१. कांड दोहा ५३ के परे रा. च. मा. में
"नर सहस्त्र मह सुनहु पुरारी, कोउ इक होइ धर्म ब्रतधारी।
धर्मशील कोटिन मह कोई, विषय विमुख विरागरत होई।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई, सम्यक् ज्ञान सुकृत कोउ लहई"।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।।९।।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।।१०।।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।११।।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।।१२।।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्।।१३।।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।१४।।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः।।१५।।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।१६।।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।।१७।।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।।१८।।

भूमि सुगंध अरु अगिनि प्रकासू । प्रानिन प्रान तपिन तपरासु ।।९।।

जीवन महू मैं बीज अनन्ता ।
बुध मह बुद्धी तेज तपन्ता ।।१०।।

सबलन मह मैं बल अहौं, इच्छा राग बिसारि ।
जनता मह मैं काम हौं, धर्म सहित असुरारि ।।११।।

सत रज तम जो भाव सब, मोते जन्मत जान ।
तिन मह वास न मैं करौं, मो मह बसत सुजान ।।१२।।

ये मिलि जग को मोहित कीन्ह्यो ।
परम अनासि मोहि नहि चीन्ह्यो ।।१३।।

दैवी माया गुनन मय, दुखते जीव तिरांय ।
जो जन मोको गहत हैं, वे माया तरि जांय ।।१४।।

आसुर भाव भरे नर नीचा, ज्ञान विलोपित माया बीचा ।
मूढ़ अरु पापी जो जग मांही, अधम पतित वे मोहि न पांहीं ।।१५।।

मोको[२] भजें चतुर्विधि प्रानी, साधक आरत लोभी ज्ञानी ।।१६।।

इन मह[३] ज्ञानी पद अधिकाना, जोग अरु भक्ति सदा जो आना ।
तिन पर मेरी अतिशय प्रीती, वे हू चाहत मोहि सब रीती ।१७।

जद्यपि उत्तम सब अहैं, ज्ञानी मोहि समान ।
आतम योगहिं साधि स्थित, मो मह सो मतिमान ।।१८।।

---

२. तुलसीदासजी भी चार तरह के भक्त बताते हैं देखिये रा. च. मा. बाल कांड में दोहा २६ पर।

३. नाम जीह जपि जागहि जोगी, विरति विरंचि प्रपंच वियोगी।
जाना चहहिं गूढ गति जेऊ, नाम जीह जपि जानहिं तेऊ।
साधक नाम जपहिं लय लाये, होंहिं सिद्ध अणिमादिक पाये।
जपहिं नाम जन आरत भारी, मिटहिं कुसंकट होंहिं सुखारी"।।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।१९।।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ।।२०।।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।।२१।।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्।।२२।।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।।२३।।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।।२४।।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।।२५।।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।।२६।।

बहु[४] जन्म भये मोहि ज्ञानी पावें।
''कृष्ण सबै'' यह बिरलहि गावें[५]।।१९।।

निज प्रकृती प्रेरित भये, काम ते ज्ञान नसाय ।
बांधि नियम, देवन बहुर, बहु बिधि बंदैं, जाय ।।२०।।

जो जन[६] जेहि को जपै जतन ते ।
अचल करौं सोइ भक्ति यतन ते।।२१।।

पूजत जे जेहि भक्ति के भावहिं, मेरो दियो फल तिनते पावहिं।।२२।।

जिन मह बुद्धि रहत है थोरी, फलहु लहत जो स्वल्प कह्योरी।
देवन पूजक देवन पावहिं, मोर उपासक मो मह आवहिं।।२३।।

निराकार मोको[८] महा मूढ प्राणी, ''लिये रूप साकार''करते बखानी।
परम भाव मेरा वे जाने नहीं, बिना अन्त मैहूँ अपूरब मैंही।।२४।।

नहीं रूप मेरा कोऊ भाव जानै, रहै जाल माया सदा ही बझानै।
सबै लोक मोहैं, मेरी योग माया, अजन्मा अघट मोहि, ताते
न ध्याया।।२५।।

समय के तीनों काल मह, जग मह जन्म जो लीन।
तिनको ज्ञाता मैं अहौं, तिन नहिं मोको चीन्ह ।।२६।।

---

४. रा. च. मा. बा. कां. दोहा २६ परे
चहु चतुरन कह नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा।।

५. रा. च. मा. कि. कां. दोहा ९ के परे
जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं।अन्त राम कहि आवत नाहीं।।

६. श्लोक १९। कृष्ण स्वयम् कहते हैं कि मैं सब कुछ हूँ। कुछ लोग कृष्ण को खंडअवतार मानते है। इनमें कौन सत्य है। खंडावतार वाले या 'कृष्णस्तुभगवान्स्वयम्,' मतवाले।

७. रा. च. मा. बा. कां. दोहा २६३ के परे
जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कुछ संदेहू।।
२२वें श्लोक के साथ है।

८. अध्याय में निराकार पूजन कठिन कहा है।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ।।२७।।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ।।२८।।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ।।२९।।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ।।३०।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञान-विज्ञान-योगो नाम सप्तमोऽध्यायः।।

रागद्वेष के द्वंद्व ते, मोहित सब जग जान।
सबही प्राणी जगत के, भ्रम भरि रहै भुलान।।२७।।

सुकृती जन जे पाप बिनासहिं।
मोहि भजै तजि दुबिधा फांसहि ।।२८।।

जरा मरन ते मुक्ति जो चाहत, जतन करत हैं, मम संरनागत।
बिदित तिन्हें सब ब्रह्म को ज्ञाना, आतम ज्ञान अरु कर्म बिधाना।।२९।।

मोकौं जानत जौन जन, अधिभूत अधिदैव अधिराज।
मरन समय मोहि जानहीं, मन लगाय नरराज ।।३०।।

सप्तम अध्याय समाप्त

.८.

।।अक्षरब्रह्मयोगः।।

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।।१।।

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।।२।।

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।।३।।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।।४।।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।५।।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।।६।।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।७।।

अक्षरब्रह्मयोग

अर्जुन बोले

ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म को, होवे केहि बिधि ज्ञान ।
काको नाम अधिभूत है, को अधिदैव सुजान ।।१।।

अधीयज्ञ क्या है यहै देह माही, कैसे है आया सो देवो बताही।
समय अन्त, जानै जती तोहि जैसे, बताओ मिलै फेर यह ज्ञान कैसे।।२।।

श्रीकृष्ण बोले

परम अनासिहिं ब्रह्म बखाना, ताहि सुभाव अध्यातम माना।
शक्ति वही जो सृष्टि बनावे, कर्म के नाम ते सोहि कहावे।।३।।

विनसत[1] भाव को पूरन ज्ञाना, नाम अधिभूतहि ताहि बखाना।
पुरुख ज्ञान अधिदैव कहाही, मैं अधियज्ञ अहौं तन माही।।४।।

अन्त समय जो सुमिरि मोहि, त्यागत है यह देह ।
मो मह पैठत सो सुजन, जानहु बिनु संदेह ।।५।।

जो जस भाव सुमिरि तनु त्यागा ।
तामह पैठत करि अनुरागा ।।६।।

मोहि निरन्तर सुमिरि कै, युद्ध करहु रणवीर ।
मन अरु बुद्धी अरपि मोहि, मो मह पैठहु धीर ।।७।।

---

१. ब्रह्म स्वयं अविनाशी है ब्रह्म की वह शक्ति जिससे जीव पैदा होते हैं कर्म है। अधिभूत ब्रह्म के नाशमानभाव के ज्ञान को कहते हैं। अधिदैव, पुरुष या ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान को कहते हैं, जिससे पुरुष या साकार ब्रह्म जाना जाता है। यज्ञों के ज्ञान से ब्रह्म पहिचाना जाता है। इसलिये अधियज्ञ उसे कहते हैं।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ।।८।।

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।९।।

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।१०।।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।।११।।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ।।१२।।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।१३।।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।१४।।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।१५।।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।१६।।

मन को स्थिर करि योगरत, करत नित्य अभ्यास।
नित चिन्तन करि जात है, परमपुरुष के पास।।८।।

सर्वज्ञ जो है अनादी है सोही।
अणू से भी छोटा अणू है जु वोही।।
अंधेरे को नासै तपै सूर्य जैसा। नहीं कोउ जानै धरै रूप कैसा।
धाता सभी का है शासक वही। ज्ञानी जो होवै, सो ध्यावै सही।।९।।

मनै एक करके तु भक्ति को धारै
पुनः प्राण को योग ते भ्रू में डारै।
जबै देह त्यागै कोऊ योगज्ञाता
सबै ते परम ईश मे वेग जाता।।१०।।

अनासी पुकारै जिसे वेदज्ञाता, विरागी यती जाहि के द्वार जाता।
जिसे खोजते ब्रह्मचारी बने, संक्षिप्त में सोहि, मुझसे सुनै।।११।।

सब द्वारन[२] को बन्द करि, हृदय माहि मन लाय।
प्राणहि[३] मस्तक बीच धरि, जोगी जोग रमाय।।१२।।

ओंकार को ही सदा जो जपै, सदा ध्यान मेरे में नित्ये तपै।
यहै ध्यान में लीन देहै तजै, परम्पद सुमारग तुरन्तै भजै।।१३।।

जो जन मोहि निरन्तर ध्यावै।
यति बिनु क्लेश तुरन्तै पावै।।१४।।

परम गती जो मैं अहौं, महापुरुख तहं आय।
अस्थिर दुःख कि खान जो, पुनर्जन्म नहिं पांय।।१५।।

ब्रह्म भुवन पर्यन्त लों, आवागमनहिं पांहिं।
मो मह पैठत जो सुजन, पुनर्जन्म तेहि नाहिं।।१६।।

२. देखने सुनने सूँघने इत्यादिकी पांच इन्द्रियाँ।

३. प्राण स्वासवायु।

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ।।१७।।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।।१८।।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ।।१९।।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।।२०।।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।२१।।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ।।२२।।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ।।२३।।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।।२४।।

सहस[४] जुगन को अह अहै, निसि को सोहि प्रमान।
ब्रह्म अहर्निसि अस गुनै, जानत जो मतिमान।।१७।।

दिनै ब्रह्म आये सबै सृष्टि भारै। निराकार ते रूप साकार धारै।
जबै रात आवै तबै जीव सारे, पुनः कोष अव्यक्त में वे सिधारे।।१८।।

बार बार सब जीवगण, प्रगटि प्रगटि बिनसाय ।
ब्रह्म निसहिं बिनसै अवश, दिन मह रूप धराय।।१९।।

अव्यक्त[५] से जो अबै मैं बखाना, अहै और अव्यक्त दूजो पुराना ।
जबै नास होवै सबै सृष्टि को सो, ही काल में नास ताको न हो तो२०

परम गती ताको कहै, निराकार अविनाश।
जहां जाय लौटे नहीं, जानहु सो मम वास ।।२१।।

परम पुरुख पारथ मिलै, भक्ति अनन्य लगाय ।
जामह सबही बसत है, जो सब देत रचाय ।।२२।।

जोगी जबही देह तजि, पुनः जन्म नहिं पाय ।
अथवा पावै जन्म पुनि, सो मै देहुँ बताय।।२३।।

अग्नी[६] दिन ज्योती रहै, उत्तर अयन छमास।
ज्ञानी शुक्लहिं देह तजि, ब्रह्म में पावैं वास।।२४।।

---

४. विष्णुपुराण— १२००० दैव वर्ष का चतुर्युग होता है और १००० चतुर्युग में ब्रह्मा का दिन होता है।

५. प्रश्न— क्या अव्यक्त भी दो हैं एक नाशमान और दूसरा अविनाशी? तिलक जी इस अव्यक्त को प्रकृति कहते हैं। जो अव्यक्त ब्रह्म से भिन्न है।

६. प्रश्नोपनिषद् १०९ में शुक्ल, कृष्ण गति का वर्णन है।
कठ. उप. २ अध्याय, ३ बल्ली ५६ श्लोक में मोक्ष या अमरपद पाने की विधि वर्णन करते हैं।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ।। २५ ।।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ।। २६ ।।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ।। २७ ।।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ।। २८ ।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽक्षरब्रह्मयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः।।

निसि[७] हो धूम अरु कृष्णपक्ष, सूरज दक्षिण होंहिं ।
चन्द्र ज्योति में जाय के, जोगी बहुरत त्योंहि ।।२५।।

शुक्ल कृष्ण ये दो गती, जानत सकल जहान ।
एक गली में मोक्ष हो, दूजो बहुरि पयान ।।२६।।

जबै जती जानत मार्ग दोऊ
भये सुधी त्यागत सर्व मोहू ।
यहै बिधी तू सब काल माहीं
रहै गती योगहि में लगाही ।।२७।।

वेद यज्ञ तप दान ते, जो कछु पुन्य को आय ।
जोगी सो सब जानि तजि, आदि परमपद पाय ।।२८।।

अष्टम अध्याय समाप्त

---

७. प्रश्नोपनिषद में इसका वर्णन ९ और १० अंकों में है।

।।राजविद्याराजगुह्ययोगः।।

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।१।।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।२।।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।।३।।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।।४।।

न च मत्स्थानि भूतानि
पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो
ममात्मा भूतभावनः।।५।।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।।६।।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।७।।

राजविद्याराजगुह्ययोग

श्रीकृष्ण बोले

परमगुप्त यह ज्ञान जो, सह विज्ञान बताय ।
सुनहु अद्वेषी सब तेरै, असुभन देहुँ हटाय ।।१।।

विद्यन को यह नृप अहै, गोपनीय मह राय[१] ।
अव्यय सहज सुधर्म है, तुरतहि फल उपजाय ।।२।।

जो नहिं माने धर्म यह, वे मोहि पावै नाहिं ।
पुनर्बार वे आवहीं, इन नरलोकन माँहि ।।३।।

अव्यक्त[२] जो भाव मेरा कहा है, सबै लोकव्यापी वही तो सदा है।
मुझी में बसे हैं सबै जीव प्रानी, नहीं मैं हूं उनमें, सुनो ज्ञान ज्ञानी।।४।।

जोग के तेज को देखहु आजू, मो मह स्थित नहिं कछुहु समाजू।
जद्यपि पोसहुं सिरजहुं नितही, बसों न तिनमह मैं कहुँ कबहीं।।५।।

घट घट घूमत वायु जो, ताको बास अकास ।
सोइ बिधि जानहु भूतगण, राखहिं मो मह बास ।।६।।

कल्प के अन्त में जीवगण, मम प्रकृती मह जाहिं ।
कल्प के आदि में वे पुनः, प्रकृती ते बहिराहिं ।।७।।

---

१. गुप्त ज्ञानों का राजा है।

२. इससे यह बात प्रकट होती है कि आत्मा शरीर में नहीं रहता बल्कि शरीर आत्मा में रहता है।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।।८।।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ।।९।।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।।१०।।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ।।११।।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ।।१२।।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।१३।।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।।१४।।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ।।१५।।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ।।१६।।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ।।१७।।

निजप्रकृती[३] मह पैठि के, सृष्टि रचौं बहु बार ।
शक्तिहीन यह भूतगण, पर्‌यो प्रकृति मझधार ।।८।।

मोहिं न बांधहिं ये सब कर्मा, रहौं विरक्त सदा सुचिधर्मा।।९।।

प्रकृति चराचरको रचै, मम अनुशासन पाय ।
एहि कारन सब जगत को, रूप सदा बदलाय ।।१०।।

जग[४] में जब जब जन्महिं लीन्हा, तब तब मूढ अनादर कीन्हाँ।
जीवन को मोहिं ईश न मानै, मेरौ भाव परम नहिं जानै।।११।।

आशा कर्म अरु ज्ञान सब, व्यर्थ अहै बिनु चेत ।
प्रकृति क्रूर माया भरी, आसुर भाव समेत ।।१२।।

दैवी प्रकृती पाय के, भजहिं साधु नित मोहिं ।
अव्यय करता जगत को, जानत हैं वे मोहिं ।।१३।।

कीर्तन मेरो नित करहिं, धीर व्रती स्थिरकाज ।
नित पूजै मोहिं भक्ति ते, जोगिन के सिरताज ।।१४।।

ज्ञान के यज्ञ ते बहु जन पूजंहिं ।
एक, बहू, अरु व्यापक बूझहिं ।।१५।।

हमहिं अर्पण, यज्ञ हम, हमहिं स्वधा, हम मंत्र ।
अग्नी, घृत अरु आहुती, औषध हमहिं निरन्त्र ।।१६।।

पिता पितामह जगत को, माता धाता ज्ञान ।
जानन जोग अरु सुद्ध मोहिं, वेद ॐकार बखान ।।१७।।

---

३. रा. च. मा. उ. कां. दोहा ८५ परे
"मम माया सम्भव संसारा जीव चराचर बिविधि प्रकारा।

४. संसार में जब जब अवतार हुआ है तब तब उसका अनादर हुआ है। ईसा मोहम्मद कृष्ण बुद्ध वगैरह इस बात के प्रमाण हैं।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।।१८।।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ।।१९।।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ।।२०।।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते।।२१।।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।२२।।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
येऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।२३।।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।।२४।।

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।२५।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।२६।।

गति, प्रभु, पालक, साखि मैं, प्रेमी सरन, निवास ।
जन्म मृत्यु जड़ कोश मैं, बीज अमर अरु वास ।।१८।।

मैं हि तपौं, बरखौं सदा, अनावृष्टि मोहिं जान ।
अमृत मृत्यू मैं हि हौं, सदसत[५] मोकों मान ।।१९।।

तज[६] पाप दिये, लिये वेद हिये, बहु सोम पिये, रचि यज्ञ महा।
बहु पुण्य भये, सुर लोक गये, सुर भोग मिले, बहु भांति जहां।।२०।।

बहु भोग किये, सब पुन्य क्षये, पुनि भूमि अये, सुरलोक छुटा ।
त्रय वेद पढ़े, वहिं पंथ चले, नर पावहिं जो अतिशीघ्र हटा ।।२१।।

सब[७] देवन को तज दीना, एक हमारो पूजन कीना ।
ऐसे तप में नितही भीना, ताहि सम्हारौं मैं निस-दीना ।।२२।

सह प्रेम जो पूजैं देवन दूजे। बिधि बिनु बंदै मोंहि मनूजे।।२३।।

यज्ञदेव हमहीं को जानहु, ताको भोगी मोहीं मानहु।
मोर भाव न जो कोइ जाना, ताको अवश पतन है पान ।।२४।।

देवन पूजक देवन जाहीं, पितृव्रती पितुलोकन पाहीं ।
भूतउपासक भूतन पावैं, मोर उपासक मो महं आवैं ।।२५।।

फल अरु फूल जो प्रेम ते, पात अरु जल मोहि देंहिं।
भक्ति सुपूरित अर्पण, साधक ते हम लेहिं ।।२६।।

---

५. सत होना और असत न होना।

६. ६ अध्याय श्लोक ४१, ४२।

७. रा. च. मा. आ. कां. दोहा ३६ परे
"सुनु मुनि तोहि कहौं सहरोसा, भजहिं जे मोहिं तजि सकल भरोसा।
करौ सदा तिनकी रखवारी, जिमि बालकहिं राख महतारी"।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।२७।।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।।२८।।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।२९।।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।३०।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।३१।।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।३२।।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।३३।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।३४।।

।।ॐतत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः।।

कारज, भोजन, भेंट, तप, दान अरु सबही काज ।
सो सब मोको अर्प करि, साधहु हे धनराज ।।२७।।

एहि बिधि तेरो छूटिहै, कर्म-जनित फल फांस ।
मो मह मुक्त तू आइहै, साधि आत्म-संन्यास ।।२८।।

सब जीवन मह सम अहौं, द्वेष प्रीति मोहि नाहिं ।
जो जन मोको भजत हैं, वे मम, मैं तिन मांहि ।।२९।।

पापी जन जो भजत मोहिं, अन्य देवतन त्याग ।
वे नर निहचै साधु हैं, सत मारग धरि, बड़भाग ।।३०।।

धर्मीजन बनि तुरत नर, समता अचलहिं पाय ।
अर्जुन जानहु सत्य यह, कबहुं न भक्त नसाय ।।३१।।

मेरे सरनन आइके, जो जन है अघरूप ।
नारी[८], वैश्य, अरु शूद्रहू, पावै गति अनुरूप ।।३२।।

धार्मिक विप्र अरु राज रिषि, विन कर कहनो काहि ।
दुःखमय अस्थिर लोक मह, मोको भजहु सदाहि ।।३३।।

मन, भक्ती, अरु यजन बहु, बन्दन बिबिध प्रकार ।
मेरो करि मोहि पाइहै, ध्यान लगाय अपार ।।३४।।

नवम अध्याय समाप्त

८. व्यासजी स्त्री-पद (स्त्री-वृत्ति वाली वेश्यादि) को नीचा समझते हैं।

।।विभूतियोगः।।

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।।१।।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।।२।।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।।३।।

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।।४।।

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।।५।।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।।६।।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।।७।।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।।८।।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।९।।

विभूतियोग

श्रीकृष्ण बोले

परम ज्ञान तोहिं पुनः सुनावों प्रेम अरु हित ते तोहिं बतावों।।१।।

मेरो जन्म न सुर रिषि जानेहि।
ये सब जन्म को मोते पाविहि।।२।।

अज, अनादि, जगनाथ मोंहि, जो जन जानिके ध्याय।
मायापाश विहाइ कै, पाप सबै तरि जाय।।३।।

बुद्धि, ज्ञान, शम, दम क्षमा, सत्य मोह नहि होय।
सुख दुख भय अरु वीरता, जन्म-विनासहु होय।।४।।

अहिंसा समता तोष पुनि, यश अपयश तप दान।
प्राणिन के बहुभाव ये, जन्मत मोते जान।।५।।

चार[1] प्रथम, मुनि सप्तरिषि, मनु जो जग विख्यात।
मेरे मानस भाव ते, उपजि प्रजा रचि तात।।६।।

सबै भांति यह जोग अरु, मम प्रभुता विस्तार।
जो जन जानै सो गहै, अंचल जोग को सार।।७।।

हौंहि जनक सब जगत को, मोते जनित जहान।
ऐसो भाव सुमान कै, भजैं मोहिं मतिमान।।८।।

मो मह मन दे प्राण लगावें, सदा परस्पर बुद्धि बतावे।
बरनन मोर करहिं दिन राती, सुख संतोष लहैं सब भांती।।९।।

---

१. सनक, सनन्दनादि।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।१०।।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।११।।

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।।१२।।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।।१३।।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः।।१४।।

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।।१५।।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि।।१६।।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया।।१७।।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्।।१८।।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे।।१९।।

सदा भजै जे मोहिं को, प्रीति निरन्तर लाय।
बुद्धि योग मैं देहुँ तिन, ताते मोको पांय ।।१०।।

ज्ञान सुदीपक तेज ते, मन मह मैं करि वास ।
अज्ञान जनित जो तम अहै, करहुँ दया करि नास ।।११।।

अर्जुन बोले

ब्रह्म तुही सुखधाम तू, तुही सुद्ध सब रूप ।
पुरुष निरन्तर दिव्य तू, आदि देव, अज भूप ।।१२।।

नारद, देवल, असिती, व्यासहु ।
आपु स्वयं पुनि एहि बिधि भाखहु ।।१३।।

यह सब तो मैं सत्यहि मान्यो, जो कछु मोको आपु बखान्यो।
जग मह तेरो जो विस्तार, पावहिं नाहिं सुरासुर पार।।१४।।

अपने बल तू आपुहि जानै। जगपति, करता, देव, इशानै।।१५।।

बरनहु सबहि बिभूति विलक्षण ।
जिनते व्यापहु लोक प्रतिक्षण।।१६।।

नित चितवत तोंहि केहि बिधि जानों ।
केहि केहि भावन में तोहिं मानों।।१७।।

अमृत रूपी यह कथा, सुनत तृप्ति नहिं होत ।
योग विभूति विशाल को, पुनि बरनहु यदुस्रोत ।।१८।।

श्रीकृष्ण बोले

विस्तार का अन्त मेरो नहीं ।
विभूती में जो श्रेष्ट बरनौ तोहि।।१९।।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।२०।।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ।।२१।।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।।२२।।

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्।।२३।।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः।।२४।।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।२५।।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।।२६।।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।।२७।।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः।।२८।।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्।।२९।।

सब जीवन मह मैं बसौं, आतम रूप सुजान ।
सब जीवन को मैं अहौं, आदि मध्य अवसान ।। २० ।।

अदितन मह मैं विष्णु कहावौं, ज्योतिन मह रवि रूप बनावौं ।
मारुत मह मम नाम मरीची, शशि के नाम नछत्रन बीची ।। २१ ।।

वेद बीच मैं साम हौं, इन्द्र देवतन माहिं।
मन हौं इन्द्रिन मध्य में, चेतन प्राणि बिचाहिं।। २२ ।।

रुद्रन मह शंकर कहौ, धनद यक्ष यह नाम ।
अग्नि अहौं बसु बीच में, परवत मेरु सुधाम ।। २३ ।।

यज्ञ करावन हारन में, मेरो नाम बृहस्पति है बहुज्ञानी।
सेनपतिन मह स्कन्द अहौं, अरु सागर बीच सबै जलखानी।। २४ ।।

भृगुरूप, महारिषि माहिं धरौ, जप यज्ञ अहौ सब यज्ञन में ।
स्थावर मध्य, हिमालय हौं, अरु "ॐ" अहौं सब
शब्दन में।। २५ ।।

तरुन मध्य मोहिं पीपल जानहु, देव रिसिन मह नारद मानहु ।
गायकगन मह चितरथ नामा। सिद्धन मह हौं कपिल अकामा।। २६ ।।

अश्वन माहि उच्चैःश्रव नामी, सागर-भव अरु शीघ्र-सुगामी ।
हाथिन मह ऐरावत राजा, राजरूप धरउँ नरन समाजा ।। २७ ।।

शस्त्रन मह हौं वज्र अरु, कामधेनु गो माहिं ।
सृष्टि करन मह काम हौं, वासुकि सर्पन माहिं ।। २८ ।।

नागन मह मैं शेष हौं, बरुण मध्य जल जीव ।
पितरन मह हौं अर्यमा, यम हौं संजम नीव ।। २९ ।।

---

२. शब्द "अश्वत्थ" का प्रयोग किया गया है कुछ लोग इसे पीपल बताते हैं कुछ लोग बरगद बताते हैं।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।३०।।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी।।३१।।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।।३२।।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।।३३।।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।।३४।।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।।३५।।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्।।३६।।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।।३७।।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।।३८।।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।।३९।।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।।४०।।

दैतन मह प्रह्लाद हौं, काल गणिन सिरताज।
गरुड़ अहौं पक्षिन बिचै, मृगन माहिं मृगराज।।३०।।

पवन होय पावन करौं, शस्त्र धरन मह राम।
मकर मत्स्य मह मैं अहौं, नद मह गंगा नाम।।३१।।

सब ही सृष्टि को आदि अरु, मध्य अन्त मोहि जान।
वादिन महतै बचन हौं, विद्यनि आतम ज्ञान।।३२।।

द्वन्द, समासन माहिं हौं, अक्षर माहिं अकार।
काल अनन्त अरु रक्षक, निरखहुँ सब संसार।।३३।।

सबहिं विनासौं मृत्यु बन, जन्मन को मैं क्षान।
कीरति, बच, श्री, नारि में, धैर्य क्षमा, स्मृति, ज्ञान।।३४।।

सामन मह बृह साम हौं, गायत्री बिच छन्द।
मगसर मासन माहिं हौं, ऋतुअन माहिं बसन्त।।३५।।

तेजवन्त को तेज हौं, छल मह जूआ रूप।
जय अरु दृढ़ता मैं अहौं, सत सतवादिन भूप।।३६।।

अर्जुन, कृष्ण के नाम ते, पांडव वृष्णिन माहिं।
व्यास अहौं मैं मुनिन मह, उशना कविजन मांहि।।३७।।

शासक महँ मैं दंड हौं, नीति विजय को सार।
गुप्तन मह मैं मौन हौं, ज्ञानहि ज्ञानि मझार।।३८।।

सब जीवन को बीज जो, सो तू मोको जान।
जगत चराचर कछु नहीं, मो बिनु हे मतिमान।।३९।।

अनन्त विभूती मेरि जो, ताको लघु इक अंश।
तोहिं बतायो दृश्यवत्, पांडुवंश अवतंस।।४०।।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्।।४१।।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।।४२।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः।।

जो जो तेज अरु महता धारे ।
होत अवश मम अंश मझारे ॥४१॥
अधिक कहां लौ तोंहि प्रचारौं ।
अंश कछुक ते सब जग धारौं॥४२॥

दशम अध्याय समाप्त

---

३. प्रश्न— जो जो वस्तुएँ तेज या महत्त्व नहीं रखतीं क्या वे ईश्वरी भाव से रहित हैं?

।।विश्वरूपदर्शनयोगः।।

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।।१।।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्।।२।।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ।।३।।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।।४।।

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ।।५।।

पश्यादित्यान्वसून्रूद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ।।६।।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि।।७।।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।८।।

विश्वरूपदर्शनयोग

अर्जुन बोले

आतम ज्ञान जो गुप्त है, ताको मोहिं बताय ।
कियो अनुग्रह मोहिं पै, संशय दियो नसाय ।।१।।

जन्म मरन सब जीव को, वरन्यो सह विस्तार ।
पुनि अक्षय जो आपु हौ, ताकौ श्रेष्ठ विचार ।।२।।

अपनो वर्णन जो कियो, सत्य सु मानौ सोहि ।
सोही रूप अपार को, दर्शन देवहु मोंहि ।।३।।

निरखन रूप अनूप की, जो शक्ती मोहि होय।
मोहि देखावहु जोगिवर, अव्यय रूपहि सोय।।४।।

श्रीकृष्ण बोले

धन जीत हे मीत ये रूप देखै, जिन्हें और कोऊ कभी नाहिं पेखै।
बहु भांति, बहु रंग, बहु रूप येहै,गणना न कोऊ कभी भी
किये है।।५।।

सूरज, बसु, अरु रुद्रन देखहु, अश्विन, मारुत को तुम पेखहु।
नयनन, नाहिं कबौं जिन पावै, सोइ अचरज हम तुम्हहिं
दिखावै।।६।।

इकठौर सबै जग देखहु आजू, सृष्टि चराचर को तुम साजू।
निरखन औरहु जो तुम चाहू, मम देह बीचै तुम सबहि पाहू।।७।।

नैन तिहारे शक्ति बिनु, पावहिं नहिं मम छोर ।
दिव्य नयन तोहि देत हौं, निरखहु जोग अथोर ।।८।।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ।।९।।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।।१०।।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ।।११।।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ।।१२।।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ।।१३।।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ।।१४।।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ।।१५।।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।।१६।।

सञ्जय बोले

ऐसो बचन सुनाइकै, जोगिराज हरिराय ।
रूप अनूपम आपनो, पारथ दीन दिखाय ।।९।।

बहु मुख नयनन ते भरे, अद्भुत रूप अलेख ।
भूषण उत्तम बहु धरे, गहे अस्त्र सब भेख ।।१०।।

गले चारु माला शरीरे सुवस्त्रं सबै अंग में लिप्त है दिव्य गंधम् ।
सबै ओर देखै अनन्तम् बिहारी अपूर्वम् स्वरूपम् लिये है मुरारी।।११।।

सूरज[2] सहसन एक सह, प्रकटि करैं उजियार ।
सोहू तेज न पाइ सके, ताको तेज अपार ।।१२।।

दीखत एकै ठौर सब, जगत धरे बहु रूप।
अर्जुन देख्यो देव मह, सकल सृष्टि तहं भूप ।।१३।।

पुलकित तन अचरज भर्यो, तापत तव सिर नाय ।
हाथ जोरि बोल्यो वचन, प्रभु को दरसन पाय ।।१४।।

अर्जुन बोले

निरखहुँ रूप विराट मह, देव सबै सब प्रानि ।
ब्रह्मा बैठे पंकजहिं, दिव्य नाग रिखि खानि।।१५।।

हाथ नयन मुख उदर अनेकहुँ, रूप अनन्त चतुर्दिक पेखहुँ ।
आदि मध्य तव अन्त न जानहुँ, विश्व रूप तोहि ईशहिं मानहुँ।।१६।।

---

१. रा. च. मा. बा. कां. दोहा २४६ परे
"विदुषन प्रभु बिराटमय दीसा बहुमुख कर पग लोचन सीसा"

२. सही अर्थ है "शायद बराबरी कर सकें"

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्।।१७।।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।।१८।।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।।१९।।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।।२०।।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।।२१।।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे।।२२।।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्।।२३।।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो

मुकुट गदा अरु चक्र सह, चहुँ दिक तेज ज्वलन्त ।
नयन निरखहिं तोहिं जिमि, सूरज तेज अनन्त।।१७।।

सबते उच्च अविनाशि तू, जग को तू भंडार।
अघट, सदा धर्महिं रखै, आदि पुरुष जगधार ।।१८।।

अनादी है जोई नहीं मध्य जाको
न पाया है कोऊ कभी अन्त ताको।
गनै बाहु जाके गणित हार मानै
थकी जीह है, वीर्य ताके बखानै।
नयना बने दोउ, चन्दा रवी है
मुखै तेज तेरो ज्वलन्त अग्नि की है।
सोई तेज को बेग, ग्रासे जगत को
सबै लोग जारे, तजे ना कोऊ को ।।१९।।

भूमि अकास स्वर्ग सब व्यापत, सबहु दिसन को आपुहि तापत।
निरखत उग्र अपूरव रूप, तीनहु लोक डरत है भूप।।२०।।

सुर समूह तब सरनन जाहीं, भय विभीत करजोरि नमाहीं ।
सिद्ध रिखी सब स्वस्ति उचारहिं, सुन्दर पद मह महिमा गावहिं २१।

सूरज, संकर, साध्य बसूगन, अश्विनि, विश्वे, वायू पितरन ।
सिद्ध असुर अरु यक्ष गन्धर्वन, निरखहिं तोहिं सबिस्मित नयनन। २२।

बाहु नयन मुख रूप को, गणना पाय न पार ।
दन्त करालहिं काल सम, देखि व्यथित संसार ।।२३।।

नयन उजाला, बदन बिसाला, बहुरंगवाला, गगन छुए ।
मनहि डराना, ज्ञान नसाना, निरखत रूप अनूपम ये ।।२४।।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास।। २५।।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ।। २६।।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ।। २७।।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ।। २८।।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगा ।। २९।।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ।। ३०।।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ।। ३१।।

मुख अरु दन्त कराल बहु, दावानल सम देखि।
सरनन दीखै मो कहीं, द्रवहु नाथ दुख पेखि ।।२५।।

कौरव भीषम राजगण, द्रोण अरु कर्ण सुधीर ।
संग लिये मम सेन के, सबहि प्रमुख रणवीर।।२६।।

जात तुरत तव मुखन महँ, जहँ बहु दन्त कराल।
सीस चूर अटके बहुत, दसनन बीच बिसाल।।२७।।

जेहि विधि नदियन बेग ते
सिन्धु मांहि, बहि जांय।
तेहि विधि दीपित मुखन महँ
ये सब बीर समाय ।।२८।।

जरतो दीपक पाइ पतंगा
तुरतै पैठि जरावहिं अंगा।
बेगि मरन को ये सब बीरा
तव मुख पैठत महत अधीरा ।।२९।।

अग्नि मुखन ते लोकन ग्रासहु
तिन मह जारि सबै तुम नासहु।
सबै जगत तव तेज भर्‍यो है
तामहँ सब ही जात जर्‍यो है।।३०।।

उग्ररूप तुम कौन हो, तुमको करहुँ जुहार ।
आदि तिहारो का अहै, प्रवृति अजान तुम्हार ।।३१।।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।।३२।।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।।३३।।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।।३४।।

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ।।३५।।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः।।३६।।

श्रीकृष्ण बोले

काल अहौं सब लोक को
लोक बिनासन आय।
एक तुही जीवित रहै
अरु दोउ सैन नसाय।।३२।।

उठु अर्जुन, यश लेहु तू
करहु राज कुरु मारि।
इन सब, मैं प्रथमहिं हन्यो
बनहु निमित्त, बिचारि।।३३।।

भीष्म जयद्रथ, द्रोण अरु
कर्ण वीर सबहीक ।
मै मार्यो बिनु दुःख तू
युद्ध जितै निरभीक।।३४।।

संजय बोले

केशव बचनन सुनत ही
कम्प गात करजोरि।
करि प्रणाम डरि डरि तबै
अटपट बैन कह्योरि।।३५।।

अर्जुन बोले

तेरी महिमा गाय जग, सत्यहिं सुख को पाय।
असुर सबै पुनि भाजते, मुनिन नमै हरखाय।।३६।।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ।।३७।।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ।।३८।।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।।३९।।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।।४०।।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ।।४१।।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ।।४२।।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ।।४३।।

क्यों नहिं पूजन वे करें, ब्रह्महुं ते तू पार ।
सदसत् अरु अविनासि तू, जग को तू रखवार ।।३७।।

देव प्रथम पहिलो पुरुष, जग को सदा अधार।
ज्ञानी, ज्ञान अरु धाम पर सब जग सिरजन हार ।।३८।।

वायु तुही, यम, अग्नि तू, वरुण, चन्द्र तव रूप ।
दक्ष अरु ब्रह्मा होत तू, सदा नमौं तोहिं भूप ।।३९।।

नमस्कार सन्मुख नमो पृष्ठ पीछे
नमस्कार तोको चहूं ओर तेही।
तेरी शक्ति को पार पावै नहीं
सबै को तू धारै, तुहीं सर्वही ।।४०।।

सखा जानि मैं बारहि बारा
कृष्ण, सखा, यदुनन्द पुकारा ।
बस प्रेम कियो अरु मोह सुभीना
महिमा अनत न तेरी चीन्हा ।।४१।।

अपराध जिन्है हंसि बोलि कर्‌यो है
अहार विहारहिं मांहि भयो है ।
बहु संग कियो अथवा हमहीं
छमहु सबै, बिनु अन्त तुही ।।४२।।

लोक चराचर के तुम ताता
गुरु ते गुरुतर, पूज्य विधाता ।
तुम सम कोउ नहिं, अधिक न पांहीं
बलहु अमित सब लोक महांहीं।।४३।।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।।४४।।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ।।४५।।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ।।४६।।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ।।४७।।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ।।४८।।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ् ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ।।४९।।

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ।।५०।।

पाय परौं सब अंग ते, पूजौं तन मन लाय।
सखा भाव अरु प्रेम ते, करिहो नाथ सहाय ।।४४।।

अनदीख सरूपहिं सहरष देखा, मन अब डरपत बहुत विसेखा।
निज रूप देखावहु असुरन त्रासा, करहु कृपा सब जग के आसा ।४५।

गदा किरीट अरु चक्र सह, मानुष रूप बनाय ।
विश्वरूप तजि सहस भुज, चौभुज देहु देखाय।।४६।।

श्रीकृष्ण बोले

अर्जुन तो पर भयऊं कृपालू, बल योग दिखायो रूप विसालू।
तेज पुंज जो विश्वहिं छावा, तुम बिनु और न दर्शन पावा।।४७।।

वेद[३] पढ़ै चहे यज्ञ करे, करि दान रचै पुनि उग्र तपोरु।
सब काज करै, सिर देइ मरै, पर दूजहिं दर्शन नाहिं भयोरु।४८।

घोर रूप को देखि कै, डर मत तू मतिमान ।
मन प्रसन्न करि त्याग भय, निरखहु रूप पुरान ।।४९।।

संजय बोले

ऐसो बचन सुनाइकै, रूप सदा को धारि ।
दियो दरस मृदु वचन कहि, डर को दियो निकारि।।५०।।

---

३. रा. च. मा. लं. कां. दोहा ११७ परे
उमा जोग जप दान तप, नाना व्रत मख नेम।
रामकृपा नहीं करहिं तस, जस निः केवल प्रेम।।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।।५१।।

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।।५२।।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।५३।।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।।५४।।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।५५।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः।।

अर्जुन बोले

निरखि रूप मानुष सुखदाई, मन मह सुखहु सुचित्ती आई।५१।

श्रीकृष्ण बोले

ऐसो रूप अनूप को, दरस सहज मत जान ।
देवनहू नित्यहि चहै, निरखन रूप महान ।।५२।।

वेद पढ़ै, तप दान करे, अरु भेंट धरे, बहु ठौर ।
रूप यहै तोहि दीख पड्यो, सोई दरस, न पावे और ।।५३।।

एहि बिधि दरसन जो चहै, भक्ति सदा मन धारि ।
जानि सकै मोहिं ताहि तो, पैठहि तत्त्व हमारि ।।५४।।

मम कर्म करै, मोहि नित्य बरै, मम भक्ति धरै, तज संग सभी ।
बिनु बैर रहै, सब जीव चहै, सोइ पैठत है मेरे अन्तर ही।।५५।।

एकादश अध्याय समाप्त

.१२.

।।भक्तियोगः।।

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ।।१।।

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्यमनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।।२।।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।।३।।

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।।४।।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।।५।।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।।६।।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ।।७।।

भक्तियोग

अर्जुन बोले

सदा लागि कै केतिकै तोहि पूजै,
अघट वो अरूपै कछू लोग पूजै।
दोऊ बीच होवै अधिक कौन प्राणी,
बताओ हमें, को अधिक योग खानी ।।१।।

श्रीकृष्ण बोले

मो मह तन मन सबही दीना, भक्ति सहित मम पूजन कीना।
ऐसो मारग जो नर जाय, ताको जोग अधिक अधिकाय ।।२।।

जाको नाश न नाम है, रूप नहीं नहिं ध्यान।
सबमह नित्य अनन्त जो, अचल जाहि सब मान ।।३।।

ताको पूजन जो करे, जानै सबै समान ।
परहितरत इन्द्रिन दमै, पावे मोहि मतिमान ।।४।।

भाव[1] अव्यक्त जो पूजहीं, कठिन मार्ग वे लेंय ।
कष्ट अधिक सोइ राह महं, नरतन को दुख देंय ।।५।।

मो[2] मह मन दे जौन जन, मो मह कर्म विसारि।
इक टक जोग लगाइकै, पूजहिं ध्यान सम्हारि ।।६।।

मो[3] मह मन दे जे रहैं, तिनको होहुं सहाय।
जन्म मरन के दुःख ते, शीघ्र उबारौं जाय ।।७।।

---

१. रा. च. मा. उ. कां. दोहा १०९ परे
"निर्गुन मत मोहि नाहि सुहाई, सगुन ब्रह्मरति उर अधिकाई"।

२. रा. च. मा. आ. कां. दोहा १०
'बचन करम मन मोहि गति, भजन करहिं निहकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुं, करौं सदा विश्राम'।।

३. रा. च. मा. आ. कां. दोहा ९ परे
'जाते वेगि द्रवहुं मैं भाई, सो मम भगति भगत सुखदाई'।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।।८।।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ।।९।।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।।१०।।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।।११।।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।।१२।।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।१३।।

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१४।।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।।१५।।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१६।।

मोमह मन अरु बुद्धि लगावैं। अन्त अवसि वे मो पहँ आवैं।।८।।

स्थिर रूप ते मन को जुतू, मुझ में लगाने ना सके।
अभ्यास का जो जोग है, उससे मुझे पाने सके।।९।।

अभ्यास की ना शक्ति हो, तो कर्म मेरा तू करे।
कर्म मेरे के किये ही, सिद्धि सागर तू तरे।।१०।।

कर्म[४] मेरा जो न हो, शर्ण मेरी तू धरे।
कर्मफल तू त्याग दे, मन रोक ऐसा तू करे[५]।।११।।

अभ्यास[६] ते ज्ञान जानौ बड़ा है, पुनः ज्ञान ते ध्यान मानौ बड़ा है।
फल-त्याग ऊंचा अहै ध्यान से, मिलै शान्ति सबही फल-त्याग से।।१२।।

बिनु द्वेष सदा, बिनु राग सदा, समभाव सदा, सुख वा विपदा।
सबही पर प्रेम दया रखना, परदोसहिं नित्य क्षमा करना।।१३।।

सदा तृप्ति अरु जोग रत, आपुहिं[७] को बश कीन।
मन अरु बुद्धी, मोहि दै, मम प्रिय भक्त प्रवीन।।१४।।

जाते ना कोउ डरत है, जो नहिं कोउ डराय।
सुख दुख भय से मुक्त जो, सो नर मोहिं सोहाय।।१५।।

शुद्ध कुशल इच्छा रहित, दुख सुख सबहि दुराय।
काज नवीन न हाथ ले, सो नर मोहिं सोहाय।।१६।।

---

४. रा. च. मा. बा. कां. दोहा १६० परे
'जे जे धरम करम मन बानी, बासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी'।

५. वैराग्य संदीपनी - शान्ति ज्ञान को भूषण ध्यान है, ध्यान को भूषण त्याग।
त्याग को भूषण शान्ति पद, तुलसी अमल अदाग।

६. रा. च. मा. आ. कां. दोहा ९ चौपाई १
'धर्म ते विरति जोगते ज्ञाना, ज्ञान मोछप्रद वेद बखाना'।

७. काम आदि मद दंभ न जाके, तात निरन्तर बस मैं ताके'।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।।१७।।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ।।१८।।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।।१९।।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ।।२०।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः।।

रागद्वेष दोउ त्यागि के, इच्छा शोच हटाय।
भक्ति करै तजि शुभ अशुभ, सो नर मोंहि सोहाय।।१७।।

शत्रु मित्र है दोउ समाना
मान अपमान समानहिं जाना।
[७]सुख दुख ताप अरु शीत सभी को
सम जानि रहै तजि संग सभी को ।।१८।।

निन्दा[८] स्तुति सम मौन हो, तोष सबै बिधि छाय।
बिनु घर दृढ मति भक्त मम, सो नर मोंहिं सोहाय।।१९।।

जो जन अमृत धर्म यह, पान करै हर्षाय।
श्रद्धा पूरन भक्त मम, सो मोहिं अतिही सोहाय।।२०।।

द्वादश अध्याय समाप्त

७. रा. च. मा. उ. कां. दोहा ३७ परे
"विषय अलम्पट सील गुनाकर, पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।"

८. दोहा ३८
"निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रान-प्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज।।"

.१३.

।।क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगः।।

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।१।।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।।२।।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु।।३।।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।।४।।

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः।।५।।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।६।।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।७।।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

अर्जुन बोले

प्रकृति, पुरुष, काको कहै, क्षेत्र क्षेत्रवित् काहि ।
ज्ञान अरु ज्ञेयहु क्या अहैं, केशव देहु बताहि।।०।।

श्रीकृष्ण बोले

यहै देह को क्षेत्र जानै सदाही ।
क्षेत्रज्ञ, ज्ञानी को, ज्ञानी बताहीं ।।१।।

क्षेत्रज्ञ मैं हूं सबै क्षेत्र माही ।
दोऊ को जो ज्ञान है, गुनौ ज्ञान ताही।।२।।

क्षेत्र के गुण रूप को, कहां से, किससे, है बना ।
क्षेत्रवित् की रूप शक्ती, सूक्ष्म में देऊं सुना ।।३।।

ब्रह्म सूत्र मह बरनन कीना। करि तहँ तर्क, सबै लिख दीना।
बहुबिधिरिखिगनदीनोगाय। छन्दविविधमहपृथकबताय ।।४।।

महाभूत, बुद्धी, अहम्, निराकार, तहं जोर ।
इन्द्रिय दस, मन, गोचर, पांच रखहु इकठौर ।।५।।

सुख दुख इच्छा द्वेषहू, मेल, धृती, अरु चेत ।
इन सबके समुदाय को, कहु सविकारी खेत ।।६।।

मान[१] न दम्भ न हिंसाकारी, सत्य क्षमा गुरुचरन पुजारी।
शुद्ध रहै अरु अटल सदाही, आत्मदमन मंह नित्य लगाही ।।७।।

---

१. रा. च. मा. अयो. कां. दोहा १२९ परे
"काम कोह मद मान न मोहा, लोभ न क्षोभ न राग न द्रोहा।"

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥१४॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥१५॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥१६॥

विषयन को करि मन ते दूर, अहंकार को पुनि कर चूर ।
जन्म मरन अरु व्याधि बुढ़ापा, जानै इनके दोख अरु तापा।।८।।

गृह सुत दारा, मन नहिं दीना।
सुख दुख में मन को सम कीना।।९।।

अचल जोग अरु भक्ति इक, मो मह नित्य लगाय।
निरजन थल मह नित रमै, नागर संग तजाय ।।१०।।

आत्मज्ञान में नित्य रत, तत्त्व ज्ञान पहिचान ।
पंडित एहि को ज्ञान कहं, और सबै अज्ञान।।११।।

तोहि बतावौ सोइ मैं, जानि जाहिं, अमराय ।
सबते उच्च, अनादि ब्रह्म, सदसत नाहिं कहाय।।१२।।

हाथ अरु पाँव अहैं चहुँ ओरा, शिर मुख नयनहु हैं सब छोरा ।
सुनत सबै वह लोकन माही, व्यापि सबै वह नित्य रहाही ।।१३।।

[२]इन्द्रिन बिनु सब गुन पहिचाना, सबही पालत रहि विलगाना ।
बिनु गुन, गुनन निरन्तर भोगी, एहि बिधि बरनै ताको जोगी।।१४।।

अचल चलहु जो सकल समाजा, भीतर बाहर व्यापि विराजा ।
इतनो लघु कोउ ताहि न जाना, सदा निकट अरु दूर समाना।।१५।।

बिनु भाग भये वह प्रानिन में, बहुभाग को रूप सदा दरसावै ।
पोषनहार सदा तेहि जानौ, रचत सबै अरु सबहि नसावै ।।१६।।

---

२. रा. च. मा. बा. कां. दोहा १२२ परे
‘आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा।
पद बिनु चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करे बिधि नाना’।।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम्।।१७।।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते।।१८।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्।।१९।।

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।२०।।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।२१।।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।।२२।।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।।२३।।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।२४।।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।।२५।।

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ।।२६।।

सब तेजन में तेज जो, तमते जानहु पार।
ज्ञान, ज्ञेय मिलि ज्ञान ते, सबके हिय रहवार ।।१७।।

ज्ञान ज्ञेय अरु क्षेत्र को, सूक्ष्महि दियो बताय।
भक्त हमारो जानि यह, मो मह जाहिं समाय ।।१८।।

प्रकृति पुरुष दोउ अस अहैं, जिनको आदि न होय।
गुण विकार सब ऊपजहिं, प्रकृति गर्भ ते दोय।।१९।।

कारज कारन को निरमाना, प्रकृती हेतु अहै अस माना।
सुख दुख उपजत जो जग माहीं, पुरुषहिं वाको हेतु बताहीं।।२०।।

प्रकृति माहि बैठत पुरुष, करत तासु गुन भोग।
ऊँच नीच तन को लहत, जो जेहि गुन के जोग।।२१।।

धरि परमातम नाम, परम पुरुष एहि देह में।
निरखि, प्रेरि, सो ईश, पालत भोगत है सदा ।।२२।।

सगुन प्रकृति अरु पुरुष को, जो जन पावहिं ज्ञान ।
काहू बिधि ते वह रहै, पावहिं जन्म न आन ।।२३।।

ध्यान किये, कोउ आपु महँ, आपु, आपु ते चीन्ह।
सांख्यअरु कर्म के योग ते, बहुजन ज्ञानहिं लीन।।२४।।

कछुक लोग बिनु ज्ञान यह, सुनि सुनि, पूजन कीन।
बेहू श्रुत[३] को मानि कै, मृत्यु तरन करि लीन।।२५।।

रूप चलाचल धारि कै, प्राणि जन्म बहु लेहिं।
इन दोउन के मेल ते, जन्मत जानहु तेहि ।।२६।।

३. औरों के मुख से सुनकर।

४. क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ।।२७।।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।२८।।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ।।२९।।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ।।३०।।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ।।३१।।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ।।३२।।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ।।३३।।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ।।३४।।

।।इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।

सब मह, सम, जो बसत है, निरखै उन्हें जो कोय।
नित्यहि चीन्ह अनित्य मह, नैनवन्त सो होय।।२७।।

जो नर निरखै नित्य ही, नारायन सब स्थान ।
आपुहि आपु न हनत है, गहत परम पंथान ।।२८।।

प्रकृती सब कुछ करत है, आपु करत कछु नाहिं ।
एहि बिधि जो जन देखते, नैनवन्त ते आहिं।।२९।।

सबै जगत को मूल इक, ताते सब बिसतार।
जो जन जानत सो नर, पावत ब्रह्म अपार ।।३०।।

गुनन हीन परमात्मा, अघट अनादि अनन्त।
बदन बीच निर्लिप्त रहि, कछु[५] नहिं आपु करन्त ।।३१।।

घट घट सूक्ष्म अकाश जिमि, चरत सदा बिनु फन्द।
देही देह में सोइ बिधि, रमत सदा निर्द्वन्द्व ।।३२।।

जेहि बिधि रविते जग उजियार ।
क्षेत्री क्षेत्र[६] प्रकाशनहार ।।३३।।

क्षेत्र अरु ज्ञानि[७] के भेद को, ज्ञान नयन ते पाय।
प्रकृति फंद कैसे छुटै, जानि मोक्ष ह्वै जाय ।।३४।।

त्रयोदश अध्याय समाप्त

---

५. यदि कुछ नहीं कहता, तो शरीर में क्यों आता जाता है। २३ श्लोक में इसे भर्ता भोक्ता कहा है यानि सुख दुख पाता है।

६. क्षेत्रज्ञ।

.१४.

।।गुणत्रयविभागयोगः।।

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ।।१।।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।।२।।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।३।।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।।४।।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।५।।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।।६।।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्।।७।।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ।।८।।

गुणत्रयविभागयोग

श्रीकृष्ण बोले

एक बार पुनि कहत हौं, ज्ञानन माहिं सुज्ञान ।
जाको जानि मुनीशगन, गहहिं परमपद स्थान।।१।।

एहि ज्ञान सहारो जो जन लीना, मोहि सम तुरतै आपुहिं कीना ।
प्रलयकाल मह दुख नहिं पावहिं, रचनकाल महँ पुनि नहिं आवहिं।।२।।

बृहत्[1] ब्रह्म है जोनि मम, गर्भ धरौं तेहि माहिं ।
भारत निहचय जानु यह, सब को जन्म तहांहिं।।३।।

अर्जुन सबही जोनि मह, जन्मत जे बहु रूप ।
ब्रह्म सभी की जोनि है, बीज देहुँ मैं भूप ।।४।।

प्रकृति जनित जो तीन गुन, सत रज तम है नाम ।
देह में अव्यय देहि को, बांधत हैं सब ठाम।।५।।

सत गुन निर्मल कारनै, तेजवन्त नीरोग ।
देहि को बांधत देह में, दे सुख ज्ञान सुयोग।।६।।

रजगुन इच्छा रूप है, लोभ संग दोउ आय ।
बांधत देहि को देह में, कर्मनि मनहि लगाय।।७।।

तम[2] उपजत अज्ञान ते, देहि मूढ हो जाय ।
आलस, नींद, कुबुद्धि से, देह में जात बँधाय ।।८।।

---

१. शंकर महद्ब्रह्म प्रकृति को कहते हैं।

२. रा. च. मा. सु. कां. दोहा ५० परे
'कादर मन कहुं एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा''।।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत।।९।।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।।१०।।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।११।।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।।१२।।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।।१३।।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते।।१४।।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते।।१५।।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।।१६।।

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।।१७।।

सत्त्व सुखन मह बांधही, रजगुन कर्म कराय ।
ज्ञानहिं ढांपत तम जबै, मूरखता अधिकाय ।।९।।

[३]भारत, रज तम ढांकि के, सत गुन होत प्रधान ।
सत तम ढांके रज बढ़ै, सत रज घटि तम खान ।।१०।।

देह के द्वारन ते विकसै अरु, ज्ञान प्रकाश करे जग माहीं ।
जानिये देह में ताहि समै, सत बाढ़ि रह्यो यह सत्य कहाहीं।।११।।

इच्छा लोभ प्रवृत्ति पुनि, कारज अस्थिर भाव ।
इन चिन्हन तें जान तू, रज को भयो बढ़ाव ।।१२।।

बिनु तेज न दे मन कामन में, मतिमन्द सदा मद मोह भर्‌यो है ।
कुरुनन्दन ताहि गुनौ तुरतै नर, सो तम पंक में बूड़ि रह्यो है। १३।

समय पयानहि देहि के, जौं सत भाव बढ़ाय।
बुध जन के शुभ लोक को, देही तुरतै जाय।।१४।।

मरन समय रज गुन भये, जन्मत पुनि रज माहि।
जो तम होवे ताहि मह, मूढ़ योनि में जांहि।।१५।।

शुभ कर्मन के फल अहै, निर्मल सात्त्विक भाव।
रज गुन दुःखहिं देत हैं, तम अज्ञान प्रभाव ।।१६।।

सत से प्रगटत सुन्दर ज्ञाना, लोभ बढ़ै जहं रजहिं प्रधाना ।
मोह प्रमाद रहत बिनु ज्ञाना, तिन महं अंश तमहिं अधिकाना।।१७।।

---

३. रा. च. मा. उ. कां. दोहा १०३ परे
"शुद्ध सत्त्व समता विज्ञाना, कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।
सत्य बहुत रज कछु रति कर्मा, सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।।
बहु रज स्वल्प सत्त्व कछु तामस, द्वापर धरम हरष भय मानस।
तामस बहुत रजोगुन थोरा, कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा।।"
गोस्वामी जी ने गुण-विभाग से युगधर्म मिलाया है।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।१८।।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ।।१९।।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।।२०।।

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणनेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ।।२१।।

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ।।२२।।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।।२३।।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।।२४।।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।।२५।।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।२६।।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।।२७।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।

सात्त्विक जन ऊपर चढ़ै, रज बीचहिं रहि जाँय।
दुर्गुन तम में लिप्त जे, वे नर नीचे जाँय।।१८।।

नैनवन्त जे परम प्रवीना, गुन ते अन्य न करता चीन्हा।
गुन ते परे जो है सो जानै, मो मह वे नर तबै समाने।।१९।।

देह[४] ते निकसैं तीनि गुन, तीनहु जौं तरि जाय।
जन्म, जरा, तजि मरन दुख, देही तब अमराय।।२०।।

अर्जुन बोले

जो जन त्रिगुनन को तिरै, तिनकी का पहिचान।
केहि विधि बिचरहिं जगत मह, तिरहिं त्रिगुन केहि बान।।२१।।

श्रीकृष्ण बोले

प्रबल भये सत रज तमहि, जो नर नाहि दुखाय।
हीन भये इन गुनन के, तिन पर मन नहि जायं।।२२।।

सदा उदासी जो रहै, गुन नहि ताहि हिलाय।
''विचरत गुन नित आपुही'' सोचि अचल रहि जाय।।२३।।

धीरज धरि निज में रमै, सुख दुख में सम ज्ञान।
प्रेम बैर निन्दा स्तुति, माटी सोन पहान।।२४।।

मान अपमान समानहि जानै, शत्रु मित्र सम रूपहि मानै।
काज नवीन करै नहि कोई, गुनसागर कँ तिरै नर सोई।।२५।।

भक्ति निरन्तर धारि कै, पूजै मोहिं मन लाय।
सो गुन सागर पार हैं, ब्रह्म में जात समाय।।२६।।

ब्रह्म कु स्थान सदा मोहि जानौ, अवघट अमरित बास बखानौ।
नित्य निरन्तर धर्म तहाँ है, सुखहु निरन्तर रहत जहाँ है।।२७।।

चतुर्दश अध्याय समाप्त

४. रा. च. मा. अ. का. दोहा ८ के नीचे

'कहिय तात सो परम विरागी। तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी।।'

.१५.

।।पुरुषोत्तमयोगः।।

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।१।।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।।२।।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ।।३।।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ।।४।।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्-
गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।५।।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।६।।

पुरुषोत्तमयोग

श्रीकृष्ण बोले

शाखा जाकी भूमि को, मूल धरै आकाश।
पात बने सब छन्द हैं, ब्रह्म[1] वृक्ष अविनाश।।
जो जन जाने ताहि को, इहै भाँति सब रूप।
वेद को ज्ञाता वो अहै, जानहु वीर अनूप।।१।।

ऊपर नीचे फैलहिं डारी, गुन जल सिञ्चित विषय फलारी।
नीचे मूल[2] करे विस्तार, जीव लोक मह कर्मप्रचार।।२।।

ताको रूप न जाने कोऊ, आदि अन्त न थालहुँ कोऊ।
कठोर कुठार सुत्यागहिं लेहू, दृढ जड़ ताकी काटे देहू।।३।।

मारग सोही खोजहु जाही, तेहि पथ धरि पुनि आवन नाही।
आदि पुरुष महँ हम तब जावैं, जहँ ते सबही सृष्टी आवै।।४।।

मोह न मान न संग को दोषू, आतमरत बिनु इच्छा रोषू।
सुख दुख तजि सब द्वन्द्व-विहीना, अव्यय पथ पर चलहिं प्रवीना५।

सूरज चन्द्र अरु अगिनि प्रकासू, तिन लोकन नहिं करैं विकासू।
पहुंचि जहां पुनि आवन नाहीं, धाम परम मम सोइ कहाहीं।।६।।

---

१. ब्रह्म वृक्ष "अश्वत्थ" को कहते हैं। कारण कि इसकी जड़ें ऊपर से लटकी हैं।

२. यह जड़ें नीचे पृथ्वी में कर्म रूप हो कर फैलती हैं।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।७।।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रमतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ।।८।।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।।९।।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।१०।।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ।।११।।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।१२।।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।।१३।।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।।१४।।

अंश हमारो जग मह आवै
जीव बनन हित रूपहिं पावै ।
मन[3] अरु इन्द्रिन, प्रकृति निवासी
खैंचि के संगही ले अविनासी ।।७।।

जबै शरीरहिं आवही, अथवा करै पयान ।
इन सब को निज संग लै, गंधहि वायु समान ।।८।।

जिह्वा नासा कान अरु, नैन त्वचा मन माँहि ।
अंश हमारे बैठिके, विषय स्वाद सब पाहिँ।।९।।

रहहि, जाहि, सुख भोगही, मेरो अंश अज्ञान ।
जानहि नहिं, गुन लिप्त जो, जानहि जे मतिमान ।।१०।।

योगी तामहँ मनहिं लगावै
आपु बीच तब ताको पावै ।
नर बिनु आतम शुद्धी कीन्हें
करहिं उपाय, तबहुं नहिं चीन्हें।।११।।

ज्योती सूरज ते निकसि, जगत करे उजियार ।
अग्नी, चन्द्रहुँ, तेज सब, जानहु, होहिं हमार ।।१२।।

भूमि धारि निज तेज ते, राखौ सबके प्रान ।
वृक्षन की रक्षा करन, सोम रूप मतिमान ।।१३।।

वैश्वानर को रूप धरि, प्राणिन माँहि बसाय।
प्राणापान को साथ ले, अन्नहिं देहुँ पचाय ।।१४।।

---

३. ५ इन्द्रिय २ मन।

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।।१५।।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।१६।।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।१७।।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।१८।।

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ।।१९।।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ।।२०।।

।। ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।

इह लोक अहैं, सबही जो प्राणी, तिनके हृदय बीच, करिके निवासू
बुद्धी[४] बढाऊं, स्मृति को जगाऊं, तापै तिन्है फैर मैंही विनासूं
वेदान्त सबही, रचि दीन्ह मैने, वेदों का ज्ञाता मैंही सदा ही
वेदों में मैं ही, इक ज्ञान जोगू, दूजो न कोऊ समता को पाही।।१५।।

लोकन मँह द्वे पुरुष हैं, क्षर अरु अक्षर दोय।
क्षर सब जीवन को कहैं, नाश न अक्षर होय ।।१६।।

पुरुष परम इनते है न्यारा, परम आत्मा ताहि पुकारा।
पैठि लोक यह सबहिं जियावे, अव्यय ईश्वर सोहि कहावे ।।१७।।

क्षर ते उच्च अहौं मैं जो अरु, उच्च अहौं मैं अक्षर ते।
वेद और सृष्टि सबै मिलि के, पुरुषोतम मोंहिं पुकारत ते।।१८।।

मोह नसाय सबै विधि जो, पुरुषोत्तम रूपहि जानत हैं।
सब ज्ञान लिये अपने हिय में, सब भावन मोहिं अराधत हैं।।१९।।

गुप्त ज्ञान यह जो अहै, सो तोंहि दियो बताय ।
जाहि जानि बुद्धी लहै, कर्म सबै बिनसाय ।।२०।।

पंचदश अध्याय समाप्त

---

४. "अमोहन" शब्द का अर्थ, भांडारकर जी ने १. हटाना २. तर्क करना, दिया है। पहिले से स्मृति और ज्ञान का नाश होना निकलता है। दूसरे से तर्क शक्ति का विकास लिया है इस श्लोक में अपने को स्मृति, ज्ञान, वेदान्त का कर्ता बनाया है। इस लड़ से तो तर्क शक्ति का रचयिता होना यहाँ उचित है और दूसरी पंक्ति (तापै जिन्है फैर मैही विनासूं) के जिनमें यहीं बदले में तर्क शक्ती प्रकासू हो जायगी। तिलकजी "नाश" अर्थ लेते हैं और आनन्द गिरि भी यही मानते हैं पर श्री अरविन्द घोष अपने 'एसेज़ ऑफ़ गीता' में "तर्क शक्ति" अर्थ लेते हैं।
गीता तत्त्वांक में "संशय छेदन" अर्थ है। यह भी तर्क शक्ति से होता है। इनकी सहायता से जीव त्रिगुणातीत होता है।

. १६ .

।।दैवासुरसंपद्विभागयोगः।।

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।१।।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।२।।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।३।।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।।४।।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।५।।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ।।६।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।।७।।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।।८।।

दैवासुरसंपद्विभागयोग

श्रीकृष्ण बोले

बिनु भय सत्त्व रहनि अरु, ज्ञान योग में प्रेम ।
दान, यजन, पाठन, तपन, सत्य सुभाव अरु नेम ।।१।।

शान्ति, अरोष, अरु त्याग सह, सत्य, अहिंसा, काज ।
सीध, दया, निर्लोभिता, मृदुता, दृढ़ता, लाज ।।२।।

तेज, क्षमा, धृति, शौच हो, अमान, अद्रोहहि साध।
जन्मत वे नर लेइ कै, दैवी सम्पत हाथ ।।३।।

क्रूर अहै क्रोधी अहैं, दम्भी, दर्पी, मान ।
सम्पति आसुरि वे लहै, जन्मै जे बिनु ज्ञान ।।४।।

दैवी सम्पत मोक्ष दे, आसुरि ते बँधि जाहिं ।
सोच करहु नहिं भारत, दैव प्रकृति तुम माहिं।।५।।

दैव असुर इन गुनन मँह, सृष्टी दियो बटाय ।
दैवी वर्णन करि दियो, आसुरि देउँ सुनाय ।।६।।

आसुरि सम्पत लै जो आवत, प्रवृति निवृति दोऊ नहिं जानत।
शौचाचार न लेशहु राखैं, वे नर सत्य कबहुँ नहिं भाखैं।।७।।

बिनु ईश कहै, जग को, सब ते, बिनु सत्य अहै अरु धर्म बिनाही।
संग भये बहु प्राणि बन्यो, अरु कामहि ताकर हेतु बताहीं।।८।।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।।९।।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।१०।।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।।११।।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ।।१२।।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।१३।।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।।१४।।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ।।१५।।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।१६।।

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।।१७।।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।।१८।।

मन मह निहचै जानि यह, क्रूर कर्म बुधिहीन।
जगत बिनाशन नष्टजन, जन्म इहां पर लीन ।।९।।

इच्छा तिनकी अन्त बिनु, ढोंग, मान, मद, कीन ।
मोह भरे अनुचित चितैं, व्रत मलीन महँ लीन ।।१०।।

चिन्ता[१] बिनु परिमान है, परलै लों विस्तार ।
निज सुख सबते परम है, राखहिं नित्य विचार ।।११।।

आसा फन्दनि में बँधे, काम क्रोध में लीन ।
निज सुख संचहि अर्थ जो, होत न्याय ते हीन ।।१२।।

यह आजु लह्यो, वह काल्हि लहैंगे ।
यह आजु अहै, वह काल्हि गहैंगे ।।१३।।

रिपु एक हन्यो, अब और हनैंगे ।
सिद्ध सुखी बलि ईश अहैंगे ।।१४।।

कुलवन्त धनी अरु हमहिं अनूपम, यज्ञ करैं अरु दान करैं हम।
अनन्द करैं यह सोच सदा, बुद्धि ढकी अज्ञान मदा।।१५।।

बहु ध्यान ग्रसा मन मोह फँसा ।
चढ़ि काम-नसा नर नर्क धँसा ।।१६।।

धन मद मानहि जे भरे, अहंकार हठ पूर ।
दम्भ भरे वे रचत हैं, बिनु बिधि यज्ञ अधूर ।।१७।।

[२]अहंकार, बल, रोष, भरि, दर्प, काम, ते पूर ।
ये खलु, मेंरे रिपु बनै, प्रति शरीर मँह क्रूर ।।१८।।

---

१. रा. च. मा. उ. कां. दोहा १०१ परे
"लघु जीवन संवत पंचदसा कल्पांत न नास गुमान असा"

२. यहाँ प्रश्न उठता है। सबही जगत ईश्वरी रचना है तो सुरासुर दोनों उसही के हैं। वे रिपु रूप कैसे धरते हैं।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।१९।।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ।।२०।।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।२१।।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ।।२२।।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।२३।।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।२४।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः।।

[३]क्रूर अधम जिन, द्वेषी पाऊं ।
आसुरि योनिहिं तिन्है पठाऊं ।।१९।।

असुर देह पावहिं मतिमन्दा, बार बहुत सुनु कुरुकुलचन्दा ।
मोको वे जब पावैं नाहीं, गती अधम में पुनि वे जांहीं ।।२०।।

[४]नरहिं विनासे नर्क जो,
ताके तीनहि द्वारि ।
काम, क्रोध अरु लोभ हैं,
तज तू तिन्हहिं सम्भारि ।।२१।।

तम के तीन जो द्वार हैं, इन ते जो बचि जाय ।
अपुनो शुभ को साधिके, गती अपूरव पाय ।।२२।।

शास्त्र विधिन को जो जन भूलैं, कर्म करैं निज मन अनुकूलै ।
सिद्धि न आवत तिन नर मांही, सुखहुं नहीं न परमपद पाहीं ।२३।

सब बिधि काजहिं शास्त्र प्रमाना ।
[५]काज करहु लै शास्त्र-विधाना।।२४।।

षोडश अध्याय समाप्त

---

३. रा. च. मा. उ. कां. दोहा ३९
'परद्रोही पर दार रत, पर धन पर अपवाद। ते नर पामर पाप मय, देह धरे मनुजाद।।'

४. रा. च. मा. अ. का. दोहा ३२
'तात तीन अति प्रवल खल, काम क्रोध अरु लोभ'।

५. प्रश्न— कौन शास्त्र माना जाय, प्रतियुग शास्त्र बदला जाय, या खाली वेद ही की आज्ञा पर चला जाय और पीछे बनी आज्ञाओं (स्मृतियों को) को न माना चाहिए। जो परस्पर विरुद्ध हैं उनमें कौन माना जाय? पशु बलि करै या न करै, मूर्ति पूजन उचित है या नहीं। ऐसे बहुत प्रश्न होते हैं।

.१७.

।।श्रद्धात्रयविभागयोगः।।

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः।।१।।

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां श्रुणु।।२।।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।३।।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः।।४।।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।।५।।

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।।६।।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं श्रृणु ।।७।।

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।।८।।

श्रद्धात्रयविभागयोग

अर्जुन बोले

शास्त्र विधिन को त्यागि जे, यज्ञ करहिं मन लाय।
तिन[1] प्रानिन मँह कवन गुन, कृष्ण कहहु अधिकाय ।।१।।

श्रीकृष्ण बोले

जैसो देह सुभाव हो, श्रद्धा को सोइ रूप।
एहि कारन गुन तीनि युत, श्रद्धा है, हे भूप।।२।।

सबकी श्रद्धा होत है, निज स्वभाव अनुरूप ।
श्रद्धामय सब होत हैं, निज निज श्रद्धहिं रूप।।३।।

सतजन पूजत देवगन, पच्छ रच्छ, रज खान।
भूत प्रेत को पूजहीं, तम जिन माहिं प्रधान ।।४।।

शास्त्र विरुद्ध जो घोर तप, तामह मन को दीन।
इच्छा प्रेरित वे नर, दुर्मद दम्भहि लीन ।।५।।

नरतन बीच जो प्रानि हैं, मूढ, तिन्हें दुख देहि ।
मोहूं को जो तहं रहौं, आसुर जानहु तेहि ।।६।।

भोजन तप अरु यजनहु दाना ।
इन सब के हैं विविध विधाना ।।७।।

आयू बल सुख तेज बढ़ावै, रोग विनासैं सत्त्व बनावैं ।
स्वादु मधुर स्थिर थीर अहारैं, इनको सात्त्विक प्रियहि बिचारैं ।।८।

---

१. त्रिगुण, याने सत, रज और तम से मतलब हैं।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।।९।।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।१०।।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ।।११।।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।।१२।।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।१३।।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।१४।।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।।१५।।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।१६।।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ।।१७।।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।।१८।।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।।१९।।

सूखे खट्टे कडुये तीत, उष्ण अधिक अरु दाहकर।
लवण भरे के राजस मीत, दुःख शोक अरु रोगकर।।९।।

प्रहर गये, रसहू गये, जूठि भये, अरु गलित भये।
बासि भये, मख जोग नये, तामस व्यंजन सोहि भये।।१०।।

फल बिनु मांगे यजत जे, शास्त्रविहित, तेहिं चीन्ह।
यजन उचित, मन में कहै, सो मख सात्त्विक कीन्ह।।११।।

फलाशा लगाये अहंकार पूरै, करै यज्ञ जे वे रजोरूप चूरै१२।।

बिनु बिधिमंत्र अरु अन्न के, दानहुं जहां न दीन्ह।
श्रद्धा बिनु जो यज्ञ है, तामस ताही चीन्ह।।१३।।

देव द्विजन गुरु पंडित पूजन, शौच सत्य सब काज।
ब्रह्मचर्य अहिंसा पालन, तप शरीर के साज।।१४।।

शीतल सुंदर सत्य सुखारी, जे नर ऐसे बचन उचारी।
पढ़हिं शास्त्र सदा निसि दीना, बाचा तप मह बनहिं प्रवीना।।१५।।

मन स्थिर, समता, मौनहू, आतम वश करि लीन।
भाव स्वच्छ जबही करैं, मानस तप वे कीन।।१६।।

श्रद्धा पूरन जो तपैं तीनहु तप सब भांति।
फलहू जो नर नहिं चहैं, सो तप सात्त्विक जाति।।१७।।

सत्कार पूजा अहंकार हेतू, ''बढ़ै मान मेरो'' यहै कारनै तू।
करै ताप जो कोई सो ''नित्य'' नाहीं, नसै शीघ्र, ताको कहै
राजसाही।।१८।।

मूढ[२] विचारन कारन ते, निज देहसतावन ताप तपै।
अरु लोक दुखावन मारन को, कोई तामस ताप के रूप तपै १९।

---

२. यह तपस्या शायद तांत्रिकी तपस्या हैं जो कलि युग में प्रचलित हुई और बुद्ध देव इसके खिलाफ थे। कृष्णजी भी इसे तामसी कहते हैं।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।।२०।।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ।।२१।।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।।२२।।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।।२३।।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्।।२४।।

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः।।२५।।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।।२६।।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।।२७।।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।२८।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः।।

दैबोही बस उचित है, यह विचारि दे दान ।
पावनहार न दे सके, ताको कछु बदलान ।।
देशकाल अरु पात्रहूँ, होवैं सब अनुकूल ।
सोही दानकु सब कहैं, सात्त्विक है बिनु भूल ।।२०।।

अबै जो दियो दान है ताहि फेरो, मिलेगो कबों मोंहिं सोचैं बडेरो।
फलाशा लगाये बहुत सोंचि देवैं, सोई दान को राजसी नाम लेवैं।।२१।।

देश काल को बिना बिचारे, याचक नीचहिं दे दे डारे ।
निदरे मंगन को सब भाँती, तामस दान कि है यह ख्याती ।।२२।।

ॐ तत् अरु ॐ सत् कहो, ये हैं ब्रह्म के नाम ।
चार वेद अठ यज्ञ सब, विप्र रच्यो तेहि नाम ।।२३।।

ब्रह्म ज्ञान जिनमें अहै, शब्द ''ॐ'' मुख लाय ।
यज्ञ दान अरु तपन को, विधी सहित करि जायँ।।२४।।

''ॐ तत्''यहि मुख ते कहे, फल की इच्छा त्याग ।
मुक्ति हितहिं वे नर रचै, तप सुदान अरु याग ।।२५।।

शुद्ध भाव, अरु कर्म शुभ, ये सब सतहि कहाय।
इनमें सत् संजोग है, जानहु हे नरराय।।२६।।

यज्ञ दान अरु तपन मँह, जो जन मन दृढ़ कीन ।
कर्म करै ''तत'' कारनै, सो सब ''सत्'' तू चीन्ह ।।२७।।

बिनु श्रद्धा जो जन तपै, यज्ञ करैं अरु दान ।
सो सब असत् सुमानिये, बिनु फल उभय जहान ।।२८।।

सप्तदश अध्याय समाप्त

.१८.

।।मोक्षसंन्यासयोगः।।

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन।।१।।

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।।२।।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे।।३।।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः।।४।।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।५।।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।।६।।

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः।।७।।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।।८।।

मोक्षसंन्यासयोग

अर्जुन बोले

संन्यास का सार क्या है मुरारी ।
कहौ ''त्याग'' का सार हे दानवारी।।१।।

श्रीकृष्ण बोले

इच्छा पूरित कर्म को, त्याग करैं ज़ब लोग ।
ताही को संन्यास का, नाम देहिं कवि लोग ।
सब कर्मन के फलन को, देवै जबही त्याग ।
ज्ञानी ताको कहत हैं, सत्य यही है ''त्याग'' ।।२।।

कछु बुध, कर्म को दूषित मानैं, तेहि हित ताको त्याग बखानैं।
तप यज्ञ सुदान न त्यागन जोगू, ऐसा भाखत बहु बुध लोगू।।३।।

त्याग विषय मम सुनहु बिचारा। त्याग अहै सुनु तीन प्रकारा।४।

तप यज्ञ सुदान न त्यागन जोगू। विमल करै ये जन मन रोगू।५।।

इन सबही को नर करै, त्यागि संग फल चाह।
उत्तम मारग ये अहै, मति मेरी नरनाह ।।६।।

नियत[१] कर्म का त्याग उत्तम नहीं है ।
भ्रम से किया त्याग सब तामसी है ।।७।।

दुःख शरीरहिं होइहैं, डर से तजै जो काज ।
बिनु फल है सो त्याग अरु, राजस ताको साज ।।८।।

---

१. नियत कर्म से प्रतिदिवस की दान पूजा इत्यादि का अर्थ होता है।

कार्यमित्येव यत्कर्म नित्यं हि क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।।९।।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।।१०।।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ।।११।।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्।।१२।।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।।१३।।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।।१४।।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः।।१५।।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।।१६।।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।।१७।।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः।।१८।।

करनो ही यह उचित कहि, नियत काज जो कीन्ह।
संग अरु फल को त्यागि तेहि, सात्त्विक कहहिं प्रवीन ।।९।।

सत्त्व सुपूरित जो है त्यागी, ज्ञानि निशंक अहै बड़भागी।
कर्म दुखद ते द्वेष न कीन्हा, कर्म सुखद में नहिं लव लीना ।।१०।।

देह धरे कोउ अस नहीं, त्याग सकै सब काम ।
कर्म फलन जो त्याग दे, ताको त्यागी नाम ।।११।।

मिष्ट, कटू अरु सम्मिलित, फल के तीन प्रकार ।
गहत अत्यागी मरन पै, त्यागि रहै अविकार ।।१२।।

सांख्य बतावहिं कारन पांचै। जे मिलि कै सब कर्मनि रांचै १३।

देह अरु कर्ता द्वै भये, इन्द्रिन को तँह लाय ।
बहु विधि चेष्टा दैवहू, सब मिलि पांच बताय।।१४।।

मन वच देहते जे नर, रचत शुभाशुभ काज ।
सो सब के ये पांच हैं, हेतु, सुनों जयराज ।।१५।।

असहू पैं जो बुद्धि बिहीना। केवल स्वयंहिं कर्ता चीन्हा।
कुमति भये, वे चीन्हहिं नाहीं, तोहिं यहै हम सत्य बताहीं ।।१६।।

अहंकार को भाव जामे नहीं, नहीं बुद्धि जाकी फंसी है कहीं।
जदै जीव ऐसो सबै लोक त्रासे, नहीं दंड पावै नहीं काहु नासै।।१७।।

ज्ञानी ज्ञान अरु ज्ञेय है, कर्म करावनहार।
कर्ता, इन्द्रिन, कर्म हैं, कर्म के तीन अधार ।।१८।।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ।।१९।।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।।२०।।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ।।२१।।

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ।।२२।।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ।।२३।।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ।।२४।।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ।।२५।।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ।।२६।।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ।।२७।।

गुण[2] की गणना के लगे, ज्ञान कर्म करतार[3] ।
विबिध रूप तीनहु धरैं, बरनहुँ सोइ बिचार ।।१९।।

सृष्टी में बहु रूप जो, तिन सब को इक रूप ।
निरखत नर जेहि ज्ञान ते, जानहु सो सत भूप ।।२०।।

व्यक्त होइ अव्यक्त जो, बसत बीच सब प्रानि ।
पृथक बतावत ज्ञान जेहि, ताको राजस जानि ।।२१।।

ज्ञान तुच्छ अरु मूल बिनु, काज एक बहु मानि ।
हेतु रहित, तामह लगै, ताकौ तामस जानि ।।२२।।

नियत कर्म है, जानि जो काज कीजै
बिना प्रेम वा द्वेष वा मोह भीजै।
तजै चाह फलहूं जबै कर्म की
धरै रूप सोही तबै सात्त्विकी।।२३।।

अहंकार ते कर्म साध्यो जो जावै, मनोकामना हेत अथवा रचावै
महाकष्ट कीने सरै काज जोई, रजोरूप पूरो अहै कर्म
सोई।।२४।।

बिना बिचारे फलन अरु, पौरुख हिंसा हान ।
मोह भर्‌यो कर्मनि रचै, तामस ताको जान ।।२५।।

निज मान हरै, संगता बिसरै धृति साहस दोउ, बरे, सो बरै,
चहकाज अरै बह काज सरै, समता न टरै, न टरै, न टरै,
अस भाव भरै, जोइ काज करै, सत रूप धरै सो धरै
सो धरै ।।२६।।

इच्छा राग अरु लाभ भय, हिंसक होय मलीन ।
सुख दुःख मँह जो लिप्त हो, तिन तू राजस चीन्ह।।२७।।

---

२. सत रज तम।

३. करतार का अर्थ करने वाला मनुष्य है।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ।।२८।।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ।।२९।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ।।३०।।

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ।।३१।।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ।।३२।।

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ।।३३।।

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ।।३४।।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ।।३५।।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ।।३६।।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ।।३७।।

तामस कर्ता ताको नाम, मूढ़ हठी, शठ, आलस धाम।
कुजोग, कुकरमी, कुनहीं होवै, काम के नाम सदा ही रोवै ।।२८।।

धृति अरु बुद्धि के गुन अनुरूप।
त्रयविधि भेद सुनावहुँ भूप ।।२९।।

सात्त्विक बुद्धी ताहि बखानै, भली भांति जो सबही जानै।
प्रवृति निवृति, अरु काज अकाजू, बन्धन मोक्ष, भयाभय,
राजू ।।३०।।

धर्माधर्म को ज्ञान अरु, काज अकाजहुँ दोय।
सत्य न जाने बुद्धि जो, सोही राजस होय ।।३१।।

तम मँह जे नर बंधि रहै, अधरम धरम बखान।
अर्थ सबै उलटो रचैं, तामस तहां प्रधान।।३२।।

सत नाम लहै धृति जौ अचला, जेहि संग लिये करि जोग प्रकासू।
बँधि जाहिं सबै, मन इन्द्रिन के अरु प्रान के कर्म, सुनौ
अरिनासू।।३३।।

राजस धृति है ताको नाम, सलोभ करावै धर्म अरु काम।
धन की इच्छा मन महँ भारी, लिप्त धृती सो फलन मझारी ३४।

जाहि धृती के कारनै, तजै न मूढ विषाद।
निद्रा भय अरु दुःख मद, तामस सो बिनुबाद ।।३५।।

सुनहु अहै सुख, तीन बिधि, जो मैं देहुँ बताय।
तहाँ रमै अभ्यास करि, दुख को अन्त दिखाय ।।३६।।

सात्त्विक सुख ताको कहैं, आत्म ज्ञान ते होय।
प्रथम कटू हो गरल सम, पाछे अमृत होय ।।३७।।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ।।३८।।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ।।३९।।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ।।४०।।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ।।४१।।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।४२।।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।४३।।

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।४४।।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ।।४५।।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।।४६।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।४७।।

जामहँ इन्द्रिन, सुख लहैं, विषय भोग करि संग ।
प्रथम सुखद पाछे दुखद, राजस ताको रंग ।।३८।।

आदि अन्त दोऊ समय, माया मोह भुलान ।
निद्रा आलस मद भरो, तामस सो सुख जान ।।३९।।

भूमि बीच कोऊ नहीं, नहीं देवगन मांहि ।
ऐसो जो इन गुनन ते, रहै सदा बिलगाहि ।।४०।।

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य के, शूद्रहु के धनजीत ।
स्वभावजनित गुन कारनै, कर्म बटै तेहि रीति ।।४१।।

शम हो, दम, तप, शौच हो, क्षमा, सत्य, अरु ज्ञान।
ब्राह्मण भाव के कर्म हैं, भक्ति सहित विज्ञान ।।४२।

सूर बड़ो, अरु चतुर दृढ़, छत्री समर अजीत ।
दान करै पालै सबै, क्षात्र भाव की रीत ।।४३।।

क्षेत्र कर्म गोपालन, तापर पुनि व्यवसाय ।
वैश्य वर्ण के होत हैं, काज़हुँ निजहिँ सुभाय ।।
शूद्र सुभावहिं होय जहँ, ताको धर्महिं एक।
करै काज सो दास को, पालै सेवा टेक ।।४४।।

मन लगाय निज काज करि, सिद्धि लहत नर राय।
जेहि विधि सिद्धी मिलत सो, तोको देउँ बताय ।।४५।।

आवत सृष्टि सबै जहँ ते, जग व्यापि रहै, सब भांतिहि जेही ।
पूजिय ताहि किये निज काज, अरु लीजिय सिद्धि तुरन्तहि
तेही ।।४६।।

निज पंथ बिना गुन नीक अहै, पर पंथ न नीक सबै गुन पूरो ।
निज भाव विकासित कर्म किये, नहिं पाप को लेशहु लेत
बसेरो ।।४७।।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।।४८।।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ।।४९।।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ।।५०।।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ।।५१।।

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ।।५२।।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।५३।।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।।५४।।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।५५।।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ।।५६।।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चितः सततं भव ।।५७।।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ।।५८।।

दोष भर्‌यो निज कर्म को, उचित अहै नहिं त्याग[४]।
दोष भरे सब कर्म हैं, धूम अगिनि संग लाग।।४८।।
जाकी बुद्धि निमोह है, बिनु इच्छा सब भाँत।
जीति आपु अरु त्यागि सब, सिद्धि परम लहि जात।।४९।।
जेहि बिधि सिद्धन ब्रह्महि पावैं ।
सोइ ज्ञान अनूपम तोहि बतावैं ।।५०।।
ज्ञान पवित्र अरु नियम दृढ़, विषय वासना त्याग।
द्वेष सबै बिसरायकै, त्यागे तब सब राग ।।५१।।
विरक्त इकाकी वो रहै, भोजन लघु परिमान ।
मन बच काया बांधि के, साधे योग अरु ध्यान ।।५२।।
अहंकार, बल, तेज को, क्रोध, लोभ, अरु काम ।
ममता, तजि कै शान्त हो, बनै ब्रह्म सुखधाम ।।५३।।
ब्रह्म भवे आतम सुखी, इच्छा शोच दुराय ।
समता सब महं राखि कै, भक्ति अपावनि पाय ।।५४।।
भक्ति निरन्तर के भये, जानै मोंहि सब वेश।
सब विधि मोको जानि कैं, मों महँ करत प्रवेश।।५५।।
जदपि करै सब कर्म वह, मेरे सरननि आय ।
नित अविनाशी पद लहै, कृपा हमारी पाय।।५६।।
मनते मो महँ कर्म तजि, मो मँह मनहिं लगाय।
बुद्धि योग में शरन ले, सदा मोंहि चित लाय ।।५७।।
ध्यान हमारो करत हों, सबही बिघन बिनास ।
गर्व करै अरु नहिं सुनै, होवै तेरो नास ।।५८।।

४. यह प्रश्न उठता है कि जिस जाति में मनुष्य पैदा हुआ है उस जाति के कर्म करना चाहिये या स्वभाव जनित कर्म करना चाहिये। वही झगड़ा, जन्मना, अथवा कर्मणा जाति का खड़ा हो जाता है।

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ।।५९।।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ।।६०।।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽ : तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।।६१।।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।६२।।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।।६३।।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।।६४।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।।६५।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।६६।।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।६७।।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।।६८।।

अहंकार ते जो सु सोचै कहूँ, नहीं युद्ध में लूँ कछू अंश हूँ।
तो मिथ्या रहै मान तेरौ यही, प्रकृती तुरत खैंचे, तोको वहीं।।५९।।

स्वभाव जनित जो कर्म हैं, तोको देहिं बँधाय ।
मोह ते करनो नहिं चहै, बरबसु तू करि जाय ।।६०।।

ईश्वर सबके हृदय में, बैठि भ्रमावै ताहि ।
चक्र बँध्यो वस्तुन जिमि, माया के बल मांहि।।६१।।

ताहि सरन सब भाव ते, तुरत गहो मतिमान ।
कृपा भये तोको मिलै शान्ति सदा सुखस्थान।।६२।।

गूढहु ते अति गूढ यह, ज्ञान दियो बतराय ।
पूरन रूप ते बूझि कै, करहु जो तोंहि रुचाय।।६३।।

सबते गूढ जो बात है, परम बचन मम जान।
अति प्रिय मेरो तू अहै, तेहि हित करों बखान ।।६४।।

मो मह मन दे भक्त बन, पूजहुं, बन्दहुं, मोहिं ।
मो को पावै अवश तू, सत्य कहौं मैं तोहिं ।।६५।।

सबही मारग तू तजै, मेरो सरनिक लाय ।
सबही पाप नसाइहौं, तू मत नेकु डराय।।६६।।

नहिं भक्ती नहिं तप जहां, जे नित निन्दहिं मोंहि।
तिन यह ज्ञान न दीजिये, जे मम चरचा द्रोहि ।।६७।।

परम गूढ जो ज्ञान यह, भक्तन मांहि सुनाय ।
मोको पावे अवश वह, भक्ति परम दरसाय ।।६८।।

---

४. रा. च. मा.सु. कां. दोहा १० परे

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाई।

५. रा. च. मा. उ. कां. दोहा १२९ परे

यह न कहिय, सठहि हठसीलहि, जो मन लाय न सुन हरिलीलहि।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।।६९।।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।।७०।।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।।७१।।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय।।७२।।

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।७३।।

सञ्जय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्।।७४।।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्।।७५।।

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।।७६।।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः।।७७।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।७८।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः।।

ऐसी सेवा ते अधिक, करै सेव कोउ नाहिं।
सोही जन को मैं चहौं, अधिक सदा जगमांहि ।।६९।।
धर्म भर्‍यो संवाद यह, जो जन पढ़त विचारि।
पूजत मोको नित्य वह, ज्ञान को यज्ञ प्रचारि ।।७०।।
सुनै जदपि कोऊ नर, श्रद्धा ते तजि द्वेष।
मुक्त होय पावैं तबै, पुन्य लोक बिनु क्लेश ।।७१।।
पारथ पूँछों तोहि ते, सुन्यो ज्ञान मन लाय ।
विनस्यो भ्रम तेरो अबै, कि अबहूँ चित्त भ्रमाय ।।७२।।

अर्जुन बोले

मोह गयो स्मृति है जगी, कृपा तिहारी पाय।
सबही संसय हटि गये, करौं जो कहु यदुराय ।।७३।।

संजय बोले

अर्जुन कृष्णहिं बीच जो, बात भई कुरुराज ।
अद्भुत तन कम्पन सबै, कहौं ताहिं मैं आज।।७४।।
व्यास दया के कारनै, सुन्यो गूढ यह ज्ञान ।
योग-पुरुष जो कृष्ण है, जोगहिं कियो बखान ।।७५।।
अचरजमय संवाद यह, सुमिरि सुमिरि बहुबार ।
फिरि फिरि हर्षों मैं अबै, सुनि यह पुन्य विचार ।।७६।।
हरि के रूप अनूप को, सुमिरौ बारहिं बार ।
अचरज होय महान मोहिं, आनँद होय अपार ।।७७।।
कृष्ण अरु पारथ जँह रहै, जोगि धनुर्धर दोय ।
जय विभूति श्री तीनिहों, मेरी मति अस होय।।७८।।

अष्टादश अध्याय समाप्त

हरये नमः। हरये नमः। हरये नमः।

।।श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

आम्नाय—ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

आम्र
भरतनिधि